भारत के महान क्रांतिकारी

लेखक
लल्लनप्रसाद व्यास



गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

मूल्य ४ ००

प्रथमावृत्ति सन् १९६६ ई०

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल

अध्यक्ष गगा-पुस्तकमाला-कायालय

लखनऊ



मुद्रक

श्रीदुलारेलाल

अध्यक्ष गगा-फाइनआट-प्रेस

लखनऊ

क्रम-सूची

❀

१

वीर सावरकर

एक बार मै बबई गया । निमित्त तो दूसरा था, लेकिन सोचा, यात्रा की पूण साथकता स्वातत्र्य वीर सावरकर के दशन करके की जाय । सो पहुँचने के दूसरे ही दिन शिवाजी-पाक-स्थित उनके निवास-स्थान पर गया, तथा उनके निजी सहायक से क्रातिकारी वीर के दशन कराने का अनुरोध किया । उत्तर मिला—"सावरकरजी तो सामान्यत किसी से मिलते नही ।" मैने उन्हे समझाया कि मै बहुत दूर से आ रहा हूँ उनसे मिलने । उनका पुन उत्तर था—"वह न मिल सकेंगे ।" साथ ही उन्होने और जो बाते की, उससे मुझे पता चला, सावरकरजी के मस्तिष्क की स्थिति भी सामान्य नही है । मैने पुन

आग्रह किया, सिर्फ दूर से ही उनके दशन करा दीजिए, मे उनसे कोई वात न करूँगा। लेकिन यह भी सभव न हो सका। दूसरे दिन मै फिर गया उनके यहा। सोचा, शायद भट या दशन की कोई सभवना निकल ही आए, लेकिन पुन निराश होना पडा।

पत्रकार होने के नाते देश-विदेश के छोटे-बडे नेताओ से मिलने का प्राय अवसर आता है, लेकिन कभी मुझ इतना प्रयास, इतनी चिरोरी-विनती नही करनी पडी, जितनी सावरकरजी के लिये करनी पडी। फिर भी उनके दशन न कर सका।

लकिन इसके कारण मेरे मन मे किसी प्रकार की खीझ का अनुभव नही हुआ, बल्कि मै सोचने लगा कि आखिर एसा क्यो ? जिस व्यक्ति ने अपना जीवन-सवस्व देशवासियो की स्वतत्रता, स्वाभिमान ओर सेवा के लिये अर्पित कर दिया, वह आज अपने ही देशवासियो से दूर रहने की कोशिश क्यो कर रहा हे ? गीता के कमयोग को पूण रूप से अपने जीवन मे उतारनेवाला व्यक्ति आज निष्क्रिय और एकात-प्रिय केसे ? क्या उसे कोई सदमा पहुँचा है ?

सोचते-सोचते मेरे सामने एक महान् कमठ एव वलिदानी जीवन चलचित्र की भाति चलने लगा।

चाफेकर बधुओ का अधूरा कार्य

घटना है १८९७ की, जब भारत मे क्राति की आग भड-

कानेवाले वीर चाफेकर बन्धुओ को पूना के क्रूर पुलिस-अधिकारी रेड की हत्या के अभियोग मे फाँसी दी गई थी। इस घटना ने १४ वर्षीय एक किशोर बालक के हृदय को आदोलित कर दिया, और वह सोचने लगा—'चाफेकर बन्धुओ ने भरे यौवन मे ही मातृ-भूमि की बलि-वेदी पर अपना शीश चढा दिया तो क्या मै अपना जीवन ऐशो-आराम मे ही काट दू? उनका कार्य अधूरा है और उनकी साध अपूर्ण। मै क्यो न उनका कार्य पूर्ण करने के लिये कटिबद्ध होऊँ!' और उस बालक ने मा दुर्गा के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि भारत माता की शृङ्ख-लाए तोडने के लिये मै अपना जीवन अपण कर दूगा। ससार जानता है, आगे चलकर स्वातत्र्य वीर सावरकर के नाम से विख्यात इस बालक ने मा दुर्गा के समक्ष की गई अपनी प्रतिज्ञा को किस कुशलता-पूर्वक निभाया!

स्वदेशी आदोलन

प्रारभ से ही सावरकर का सपक लोकमान्य तिलक, परा-जपे आदि नेताओ से था। किंतु देशवासियो ने उन्हे शीपस्थ राष्ट्रीय नेताओ के समकक्ष उस समय देखा, जब १९०५-६ मे, स्वदेशी आदोलन के दिनो मे, सवप्रथम पूना के बाजारो मे उन्होने विदेशी कपडो की होली जलाई। इससे पूर्व ऐसा क्रातिकारी कदम उठाने का साहस बडे-बडे नेताओ को भी न हुआ था। इस अवसर पर लोकमान्य तिलक का ओजस्वी भाषण हुआ, जिससे उन्होने सावरकर के साहस की प्रशसा की।

उस समय सावरकर कॉलेज के विद्यार्थी ही थे, अतएव प्रिंसिपल को यह घटना विदित हुई तो उन्होंने सावरकर पर जुर्माना करके उन्हे कॉलेज से निष्कासित कर दिया। येनकेनप्रकारेण सावरकर बबई-विश्वविद्यालय से बी० ए० कर सके। इसके बाद २२ वर्ष की अवस्था मे सावरकर बैरिस्टरी पढने के बहाने विदेश—बल्कि ब्रिटिश शासन की नाक के नीचे—लदन मे भारतीय क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित करने के लिये रवाना हो गए।

विदेश मे क्राति

लदन जाने पर सावरकर पडित श्यामजी कृष्ण वर्मा के साथ क्रान्तिकारी कार्य मे जुट गए। शीघ्र ही इनका कार्य फ्रास, जर्मनी आदि योरपीय देशो मे फैल गया। यही इन्होने एक निर्वासित रूसी क्रातिकारी से बम बनाने तथा उसे प्रयोग करने की विधि सीखी, और उसे साइक्लो स्टाइल से छापकर भारत मे भी वितरित किया। यही १९०७ मे सावरकर ने १८५७ के वीरो की स्मृति मे अर्द्ध-शताब्दी-समारोह मनाया। उस दिन सावरकर के नेतृत्व मे भारतीय विद्यार्थी '१८५७ के वीरो की जय' के बिल्ले लगाकर घूमे। सन् ५७ के स्वतत्रता-सग्राम को 'गदर' की सज्ञा देनेवाले ब्रिटेनवासी यह देखकर जल-भुन गए। ब्रिटेन-भर मे इस कार्य से तहलका मच गया। ब्रिटिश पत्रो ने सावरकर को जी भर कोसा। इसके पूर्व 'प्रथम स्वतत्रता - सग्राम' - नामक पुस्तक लिखकर सावरकर ब्रिटिश लेखको, इतिहासकारो तथा समाचार-पत्रो द्वारा कही गई बातो

का लेते हुए ही '१८५७ के गदर को' भारत का प्रथम स्वतन्त्रता-सग्राम सिद्ध कर चुके थे। यह पुस्तक पूरी भी न हो पाई थी कि ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर लिया, किंतु फिर भी गुप्त रूप से यह पुस्तक छपी और सैकडो प्रतिया भारत मे भेजी गई।

इसके बाद भी वहाँ सावरकर ने असाधारण साहस का प्रदर्शन उस समय किया, जब उनकी प्रेरणा और योजना से एक पजाबी युवक मदनलाल धीगरा द्वारा लदन मे कर्जनवायली को गोली से उडा देने के बाद उसके विरुद्ध निदा का प्रस्ताव पास करने के लिये एक सार्वजनिक सभा की गई। इस सभा की अध्यक्षता श्रीविपिन चद्रपाल ने की थी, जिसमे सुरेंद्रनाथ बनर्जी भी उपस्थित थे। धीगरा को जी भरकर गालियाँ देने के बाद अंत मे सभापति ने कहा—"तो क्या यह मान लिया जाय कि धीगरा की निदा का प्रस्ताव सर्वसम्मति से प्राप्त हुआ।' तभी सभा के बीच मे आवाज आई, नहीं। इस पर एक भारतीय ने खीझकर कहा—'कौन है वह? उसे पकडकर लात मारकर सभा से बाहर निकाल दो।' इस पर गर्जना हुई, "मै हूँ सावरकर।" सावरकर का नाम सुनते ही सभा मे सन्नाटा छा गया। किसी की भी हिम्मत न हुई कि उनके विरुद्ध एक शब्द भी बोल सके। सावरकर ने पुन कहा—"मै इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। जब धीगरा का मामला न्यायालय मे विचाराधीन है, तो इस समय उसके विरुद्ध या पक्ष मे कोई बात कहना अन्याय है।" इसी समय

एक अँगरेज ने सावरकर के मुँह पर एक घूसा जमा दिया। वहाँ बैठे हुए सावरकर के साथी अपने नेता का यह अपमान कैसे सहन कर सकते थे। अतएव उनमे से एक ने उस अँगरेज के सिर पर जोरों से लाठी धमक दी। इसके बाद ही सभा मे भगदड मच गई और धींगरा के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव जहाँ का तहाँ धरा रह गया।

सावरकर अब तक ब्रिटेन मे क्रातिकारी के रूप मे प्रसिद्ध हो चुके थे। अतएव, बॅरिस्टरी पास कर लेने के बाद, जब उन्हे सनद देने का समय आया, तो उनसे यह वचन माँगा गया कि वह कभी कोई राजद्रोहात्मक कार्यवाही न करेगे। सावरकर ने यह वचन नही दिया, और वह बैरिस्टरी पास करने के बाद भी सनद प्राप्त न कर सके।

इसके बाद १९१० मे न्याय और लोकतत्र का ढोंग रचने-वाली अगरेज - सरकार ने किस अन्याय-पूर्वक सावरकर को गिरफ्तार कर, भारत जाकर उन पर मुकदमा चलाने का प्रयास किया, जहाज पर जाते हुए सावरकर कैसे शौचालय के मार्ग से समुद्र मे कूदकर पुलिस की गोलियो से बचते हुए फ्रास मे पहुचे, फिर कसे अँगरेज-पुलिस ने अतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लघन कर उन्हे पुन गिरफ्तार किया, और भारत मे आकर उन्हे ५५ वर्ष की सजा दिलवाई, यह बात सर्वविदित है। उसे पुन दोहराने की आवश्यकता नही। ५५ वर्ष की सजा काटने सावरकर अडमान भेजे गए। वहाँ उन्हे जो नारकीय जीवन व्यतीत करना पडा, उसे सुनकर

हृदय थर्रा उठता है, आख सजल हो जाती है। वहा नारियल की जटाएँ कूटकर, रस्सिया बनाते-बनाते उनके हाथो म छाले पड जाते थे। हाथ से खून बहना रहता था, फिर भी उन्हे कटीली रेशेदार रस्सिया बटनी ही पडती थी। तेल निकालने के लिये उन्हे कोल्हू मे बैलो की जगह जुतना पडता था। कोल्हू चलाते-चलाते उनके सिर मे जोरो की पीडा होकर चक्कर आने लगता, गिर-गिर पडते, लेकिन फिर भी कोल्हू खीचना ही पडता। रात-भर बुखार मे कराहते, और प्रात उसी कोल्हू मे पुन जुतना पडता। जेल की छोटी-सी कोठरी मे बद कर सभी कैदियो के लिये शौच जाने का पीपा उनके बिस्तर के पास रख दिया जाता। रात म पीपा भर जाने पर उसका मल-मूत्र उनके बिस्तरे से होकर बहता। क्या इन नारकीय यातनाओ की कल्पना वे लोग कर सकते है, जो जेलो मे राज-नीतिक बदी बनकर 'ए' और 'बी' श्रेणी की सुविधाएँ प्राप्त करते थे।

इसी बीच भारतीय जनता ने अडमान से सावरकर को छुडाने का प्रयास किया। ७५ हजार देशवासियो के हस्ताक्षर-सहित प्राथना-पत्र सरकार के पास भेजा गया, जिसमे सावर-कर की रिहाई की माँग की गई। देश के प्राय सभी वर्ग लोगो ने इस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसी सदर्भ मे यह भी ज्ञातव्य है कि महात्मा गाधी ने इस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था। अतत १९३७ मे जब विभिन्न प्रातो मे सर्वप्रथम काग्रेस-सरकार बनी, तब श्रीजमना-

एक अँगरेज ने सावरकर के मुँह पर एक घूसा जमा दिया । वहाँ बैठे हुए सावरकर के साथी अपने नेता का यह अपमान कैसे सहन कर सकते थे । अतएव उनमे से एक ने उस अँगरेज के सिर पर जोरो से लाठी धमक दी । इसके बाद ही सभा मे भगदड मच गई और धींगरा के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव जहा का तहा धरा रह गया ।

सावरकर अब तक ब्रिटेन मे क्रातिकारी के रूप से प्रसिद्ध हो चुके थ । अतएव बेरिस्टरी पास कर लेने के बाद, जब उन्हे सनद देने का समय आया, तो उनसे यह वचन माँगा गया कि वह कभी कोई राजद्रोहात्मक कार्यवाही न करेगे । सावरकर न यह वचन नही दिया, और वह बेरिस्टरी पास करने के बाद भी सनद प्राप्त न कर सके ।

इसके बाद १९१० मे न्याय और लोकतत्र का ढोग रचने-वाली अगरेज - सरकार ने किस अन्याय-पूवक सावरकर को गिरफ्तार कर भारत जाकर उन पर मुकदमा चलाने का प्रयास किया, जहाज पर जाते हुए सावरकर कैसे शौचालय के माग से समुद्र मे कदकर पुलिस की गोलियो से बचते हुए फ्रास मे पहुँचे, फिर कसे अँगरेज-पुलिस ने अतर्राष्ट्रीय कानून का उल्लघन कर उन्हे पुन गिरफ्तार किया, और भारत मे आकर उन्हे ५५ वष की सजा दिलवाई, यह बात सवविदित हे । उसे पुन दोहराने की आवश्यकता नही । ५५ वर्ष की सजा काटने सावरकर अडमान भेजे गए । वहाँ उन्हे जो नारकीय जीवन व्यतीत करना पडा, उसे सुनकर

हृदय थर्रा उठता है, आखे सजल हो जाती है। वहा नारियल की जटाएँ कूटकर, रस्सिया बनाते-बनाते उनके हाथो मे छाले पड जाते थे। हाथ से खून बहता रहता था, फिर भी उन्हे कटीली रेशेदार रस्सिया बटनी ही पडती थी। तेल निकालने के लिये उन्हे कोल्हू मे बैलो की जगह जुतना पडता था। कोल्हू चलाते-चलाते उनके सिर मे जोरो की पीडा होकर चक्कर आने लगता, गिर-गिर पडते, लेकिन फिर भी कोल्हू खीचना ही पडता। रात-भर बुखार से कराहते, और प्रात उसी कोल्हू मे पुन जुतना पडता। जेल की छोटी-सी कोठरी मे बद कर सभी कैदियो के लिये शौच जाने का पीपा उनके बिस्तर के पास रख दिया जाता। रात मे पीपा भर जाने पर उसका मल-मूत्र उनके बिस्तरे मे होकर बहता। क्या इन नारकीय यातनाओ की कल्पना वे लोग कर सकते है, जो जेलो मे राज-नीतिक बदी बनकर ए और 'बी' श्रेणी की सुविधाएँ प्राप्त करते थे।

इसी बीच भारतीय जनता ने अडमान से सावरकर को छुडाने का प्रयास किया। ७५ हजार देशवासियो के हस्ताक्षर-सहित प्रार्थना-पत्र सरकार के पास भेजा गया, जिसमे सावर-कर की रिहाई की माँग की गई। देश के प्राय सभी वर्ग लोगो ने इस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसी सदर्भ मे यह भी ज्ञातव्य है कि महात्मा गाधी ने इस प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था। अतत १९३७ मे जब विभिन्न प्रातो मे सर्वप्रथम काग्रेस-सरकार बनी, तब श्रीजमना-

दास मेहता के प्रयासो से सावरकर की रिहाई हुई, और अडमान मे छुटकारा पाकर उन्होने पुन अपनी मातृभूमि के दशन किए, जिसके दर्शन की आशा वह इस जीवन मे एक प्रकार से छोड चुके थे। यहाँ आने पर देश के कोने-कोने की जनता और सभी सम्थाओ ने उनका जैसा स्वागत किया, चिर-स्मरणीय है।

दोप किस पर ?

आज हमारे सौभाग्य से भारतीय क्रातिकारियो के सिर-मार स्वातत्र्य वीर सावरकर हमारे बीच जीवित है। परतु हमे विचार यह करना है कि क्या हमारे देशवासियो ने इस क्रातिवीर के त्याग, तप या और सेवाओ का उचित सम्मान किया है, जिसने अपन जीवन की सपूण तरुणाई देश की स्वतत्रता के लिये होम कर दी ? उत्तर मे निराश होना पडेगा। वस्तुत भारतीय नेताओ और जनता ने राष्ट्रीय स्वतत्रता के लिये की गई वीर सावरकर की अद्वितीय सेवाओ का विस्म-रण कर उनके प्रति जो उदासीनता ओर उपेक्षा प्रदर्शित की है, वह सपूण राष्ट्र के लिये एक महान् कलक की बात है। विश्व-इतिहास मे शायद ही ऐसा कोई अन्य उदाहरण मिले, जब देश के लिये सवस्व समर्पित करनेवाले देश भक्त के साथ उसके ही देशवासियो ने ऐसा उपेक्षा-पूर्ण व्यवहार किया हो। इसी उपक्षा का परिणाम यह है कि कभी सपूण ब्रिटिश शासन को नाको चने चबवा देनेवाला स्वातत्र्य वीर आज ऐसा मौन और निश्चेष्ट हो गया है कि जैसे वह हमारे बीच मे है ही नही

आखिर उनके इस अस्तित्व-विहीन जीवन के लिए उत्तरदायी कौन है ? स्पष्ट रूप से इसके उत्तरदायी हैं देशवासी जिसमे हम सभी सम्मिलित है । सरकार का नाम मै अलग से इसलिये नही ले रहा हूँ, क्योकि प्राय जनतात्रिक देशो मे सरकार बहुत कुछ जनता की मन स्थिति की ही परिचायक होती है । यदि भारतीय जनता सावरकर की अद्वितीय सेवाओ का विस्मरण न करती, तो सरकार का रवैया आज भी उनके बारे मे दूसरा ही होता । क्या स्वप्न मे भी कोई यह कल्पना कर सकता था कि सावरकर-जैसा उत्कट देश-भक्त देश के सर्वमान्य नेता महात्मा गाधी की हत्या का षड्यत्र रचता ? लेकिन उन्हे गाधी-हत्याकाड मे शामिल किया गया । यद्यपि न्यायालय ने उन्हे सर्वथा निर्दोष और निष्कलक बताया, किंतु इस कृत्य से उन्हे कितनी हार्दिक वेदना हुई, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । क्या कभी स्वप्न मे भी उन्होने अपने ही देश-वासियो के द्वारा उनके प्रति की गई अपनी सेवाओ के इस प्रतिफल की कल्पना की होगी ? आज जब अधिकाश लोग देश के लिये किए गए अपने त्यागो और बलिदानो की कीमत प्राप्त कर ससार के सब सुख सुलभ करने मे सलग्न है, तब देश की स्वतत्रता के लिये सर्वस्व अर्पण कर देनेवाले एक स्वातन्त्र्य वीर को सम्मान-पूर्ण सामाजिक जीवन से भी वचित कर दिया गया । उचित यह था कि निर्दोष सावरकर को गाधी-हत्याकाड मे सम्मिलित किए जाने की त्रुटि का प्रायश्चित्त कर उस पर खेद प्रकट किया जाता, किंतु ऐसा नही हुआ,

और उसके बाद भी काफी समय तक उन पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए ।

क्रान्तिकारियो का प्रेरक

हम आज चद्रशखर 'आजाद', भगतसिह आदि क्रांतिकारियो के चित्रा और मूर्तियो को पूजते है, किंतु इस जीवित क्रान्तिकारी की यह उपेक्षा हो रही है, जिससे कभी उपर्युक्त क्रान्तिकारीगण अपने कार्यो मे प्रेरणा एव मार्ग - दर्शन प्राप्त करते थ तथा उनकी क्रांति-सबधी पुस्तको को गीता या बाइबिल की तरह पूजते थे ।

यह सभव है कि सावरकरजी की मान्यताओ और विचारो मे देश के अनेक शीर्षस्थ नेतागण और देशवासी सहमत न हो लेकिन यह असहमति और विचार-भिन्नता को उनके प्रति वतमान उदासीनता और उपेक्षा तथा विगत अविस्मरणीय देश - सेवाओ के विस्मरण का कारण बनाना उचित नही । यह हमारे सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जीवन की एक अवाछित एव अहितकर प्रवृत्ति का द्योतक है ।

प्रखर हिंदू राष्ट्रवाद के समर्थक

सावरकरजी प्रखर हिंदू राष्ट्रवाद के समथक , जो वह अपने क्रातिकारी जीवन मे भी थे, बाद मे भी रहे और आज भी है । वह हिदुत्व को साप्रदायिक नही मानते । उनका कहना है—"हमे सप्रदाय कहना मूर्खता है । हम हिंदू स्वत एक

राष्ट्र है। जिस प्रकार जर्मनी में जर्मन लोग राष्ट्र है और यहूदी सम्प्रदाय है। तुर्की में तुर्क लोग राष्ट्र है और अरब तथा अर्मीनियन सम्प्रदाय है, उसी प्रकार हिंदुस्तान में हिंदू लोग राष्ट्र है और सब जातिया सम्प्रदाय है।

उन्होंने यह भी कहा—'मै राष्ट्रवादी हूँ, किन्तु कांग्रेस टिकट पर नही, बल्कि अपने अन्तःकरण के विश्वास पर।" उनका यह कथन उनके व्यक्तित्व के स्वाभिमान एवं स्वातन्त्र्य प्रियता का द्योतक है।

विचारणीय बात

जब किसी देश मे अनधिकारियो या अपेक्षाकृत कम अधिकारी व्यक्तियो की पूजा एव अधिकारी व्यक्तियो की उपेक्षा होती है, तो वहाँ निराशा, कुंठा, निरुत्साह आदि ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियो का जन्म होता है, जो उस देश या समाज के मनोबल, तेजस्विता और कल्याणकारी गुणो को समाप्त कर देती है। आज हम विचार करे कि कही हमारा देश तो इससे ग्रस्त नही हो रहा है। सावरकर-जैसे व्यक्तियो की उपेक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन की सबसे बडी विडबना है। काश, यह विडबना सावरकरजी के जीवन-काल मे ही दूर हो सकती। राष्ट्र-रक्षा के लिये इस बलिदान-बेला मे तो ऐसे ही बलिदानी जीवन हमारे लिये श्रद्धास्पद हो सकते है।

२

राजा महेद्रप्रनाप

अभी कुछ समय पूव मुझे क्रातिकारी-शिरोमणि राजा महेद्रप्रताप का एक पत्र और उसके साथ ही एक छपा हुआ पत्रक प्राप्त हुआ कि वह अब भारत से जा चुके है। अपने कार्य-क्षेत्र के लिये इस देश को उपयुक्त न पाकर कही विदेश मे बसने का विचार कर रहे है। मुझे इस समाचार मे स्वभावत बडा कष्ट पहुँचा। मैने उनसे निवेदन किया कि वह अपने जीवन के अतिम प्रहर मे अब मातृ-भमि छोडकर न जायँ, जिसकी स्वनत्रा के लिये उन्होने जीवन का महत्त्व-पूण अश अपनी तरुणाई अर्पित कर दी थी।

कुछ दिन बाद उनका उत्तर आया —"राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन के कृपा-पूण आग्रह और आप-जैसे स्नेहीजन के स्नेहानुरोध को मानकर मैने विदेश मे जाकर बसने का विचार त्याग दिया है, अब इस देश मे ही रहूँगा।" मैने इस पर उन्हे धन्यवाद का औपचारिक पत्र भेज दिया।

लेकिन मेरा भावुक हृदय यह सोचने लगा कि आखिर क्या कारण है कि लगातार ३ दशक तक विदेशो मे ही भारत की आजादी के लिये जीतोड और कल्पनातीत प्रयास करनेवाला तथा विदेश मे भारत की सवप्रथम अस्थायी सरकार की स्थापना का अपूर्व साहस करनेवाला यह महामानव आज भारत की आजादी के १६ वर्ष बाद यहाँ घुटन का अनुभव कर रहा है। उसी समय एक महान् जीवन चलचित्र की भाँति नेत्रो के सामन घूम चला।

स्वभाव के क्रातिकारी

सन् १९१३का कोई धार्मिक पव। तीथराज द्वारकापुरी का समुद्र-तट। कुछ नासमझ पडे क्रातिकारी स्वभाव के उस २६ वर्षीय युवक से पूछते है—"आपकी जाति क्या है?"

"मेरी जाति? मै तो भगी हूँ। कहिए, आपको कोई एत-राज है?" उस युवक ने तत्काल उत्तर दिया।

"इतने बडे राजा होकर भगी है आप?" पडो को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, मै हे। क्या भगी इस तीथ मे नही आ सकते?"

'नही अ। सकने।" धम के मर्म के नासमझ उन पडो ने कहा।

ता मै भी नही जाऊँगा ऐसे तीथ मे, जिसकी रक्षा का भार मानवना से रहित लोगो पर है।" और राजा विना द्वारकाजी के दशन किए ही लोट आए।

वाद ने राजा की अर्तनिहित मानवता का सभी को परिचय उस समय मिना, जब उन्होने सन् १९०९ मे वृदावन मे प्रम-महाविद्यालय की स्थापना कर उसके व्यय-निर्वाह-हेतु अपने ५ गाव, एक विशान भवन आर २५ हजार रुपए सौन दए।

बहादुर पत्रकार

इसी के आस-पास 'प्रेम'-नामक हिदी पत्र का प्रकाशन ओर सपादन। कोई सोच सकता है कि किसी भाषा का समुचित ज्ञान हुए विना ही उस भाषा के पत्र का सचालन और सपादन हो। लेकिन क्रानिकारी महेद्रप्रताप तो क्रातिकारी ही ठहरे। पत्र पहले चलता है और भाषा का आवश्यक ज्ञान बाद मे मानो स्वत प्राप्न हो जाता है।

१९१४ मे हिदी और उर्दू दोनो मे 'निर्बल सेवक'-नामक पत्र का प्रकाशन। मजिस्ट्रेट इस पत्र से ५०० रु० की जमानत मॉगता है। कारण? राजा के एक लेख का जमन-समथक होना। ५०० रु० जमा कर दिए जाते हे,। (क्या भय या आतक से सच्चा पत्रकार ओर क्रातिकारी अपनी नीति बदल सकता है?)

१९०७ मे सवप्रथम सपत्नीक विश्व-यात्रा। बाद मे भारत की स्वतत्रता के लिये हृदय मे अग्नि प्रज्वलित। १९१५ मे महायुद्ध के समय जमनी, तुर्की, ईराक, अफगानिस्तान आदि की यात्रा। उद्देश्य भारत की ब्रिटिश सरकार के चारो आर ब्रिटिश - विरोधी देशो को एकत्रित कर देना। जमनी मे सम्राट् कैसर से महत्त्व-पूण भेट तथा भारत की स्वतत्रता के लिये जमनी की सहायता के प्रश्न पर बातचीत। साथ ही इस्लामी ससार के धार्मिक गुरु सम्राट् सुल्तान रिशाद अनवर पाशा आदि से भी ब्रिटिश-विरोधी काय-क्रम की दृष्टि से विचार-विमश। कैसर द्वारा। महेद्रप्रताप का अफगानिस्तान के अमीर को पत्र। साथ ही नेपाल के महाराजाधिराज तथा भारत के विभिन्न राजा-महाराजाओ को स्वतत्रता की घोषणा करने की अपील से युक्त पत्र भी।

१ दिसबर, १९१५। भारतीय क्रातिकारी इतिहास की अभूत-पूव घटना। राजा महेद्रप्रताप के इस जन्म-दिवस पर अफगा-निस्तान मे भारत की अस्थायी या कामचलाऊ सरकार की स्थापना। काय-काल उस समय तक, जब तक कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा भारत मे विधिवत् स्वदेशी सरकार की स्थापना नही हो जाती। 'आजीवन राष्ट्रपति' के रूप मे राजा प्रताप, प्रधान मत्री पद पर मौलाना बरकत उल्ला और गृहमत्री मौलाना उबैदुल्ला। साथ ही अन्य अनेक मत्रियो की भी नियुक्ति। इस भारतीय अस्थायी सरकार का सीधा सपक अफगानिस्तान-सरकार से—यहाँ तक कि दोनो सरकारो मे

एक सधि भी । अस्थायी सरकार की ओर से कुछ शिष्ट मडलो का जाना तथा अनेक महत्त्व-पूण घोषणाएँ की । रूस के जार को स्वण-पट पर सदेश भेजा जाना ।

१९१८ मे रूस जाकर राजा महेद्रप्रताप का ट्राटस्की से मिलन और वाद मे लेनिन से भी ।

१९२० मे अफगानिस्तान-सम्राट् अमानुल्लाखाँ राजा महेद्रप्रताप को तिब्बत, चीन, जापान, स्याम, अमेरिका, जमनी और तुर्की के शासको के नाम पत्र देती है और मुस्किराकर उस भारतीय क्रातिकारी से कहता है—"भारत के लिये जो जमनी कर सकता है, वह अफगानिस्तान भी कर सकता है ।" इसके वाद अफगान-सम्राट् अपना हस्ताक्षर-युक्त चित्र और भारी स्वर्ण-चेन से युक्त स्वर्ण-घडी भेट करता है, गले से लगाता है और खुदा हाफिज कहकर अलबिदा लेता है । फिर वह भारतीय क्रातिकारी दुनिया की छत—पामीर पर चढकर चल देता है तिब्बत-चीन आदि देशो की ओर ।

निःस्पृह कर्मयोगी

उसी दौरान एक अफगान सैनिक अधिकारी अकेले मे भारतीय क्रातिकारी से कहता है—"अफगानी सेनाएँ भारत मे कूच करेगी । उस समय आपका देश आजाद होगा । आप देश के सम्राट् होगे । क्या आप मुझे उस समय एक प्रात का शासक बनाना तो न भूलेगे ?" क्रातिकारी राजा की त्योरियाँ

चढ जाती ह—"क्या बक रहे हो ? तुम्हे यह नही पता तुम किससे और क्या बात कर रहे हो । मुझे जो कुछ अ पिता से मिला था, सब दे डाला । यदि मुझे पूरी दुनिया राज्य मिल जाय, तो उसे भी दे डालूँगा । मेरे विचार मे कि भी व्यक्ति का धरती के किसी भी भाग पर शासन न हो चाहिए ।"

एम० एन० राय से भेट

सन् १९२१, श्री एम० एन० राय का राजा महेंद्रप्रताप मिलन । "आप भारत क्यो नही जाते । अँगरेज सरक आपको फासी नही दे सकती । २-४ साल की जेल-अवश्य देगी, लेकिन इसके बाद आप मुक्त हो जायँगे, श्रीर ने सुझाव दिया ।

"नही, कभी नही । गुलाम देश मे जाने की अपेक्षा वि मे ही मरना बेहतर है ।" भारत की अस्थायी सरकार के र मत्री मौलाना बरकतउल्ला बीच मे ही बोल उठे । बात ज की तहाँ धरी रह जाती है ।

रासबिहारी बोस से भेट

सन् १९२२ । जर्मनी मे क्रातिकारी पत्रको के प्रका की व्यवस्था करके अमेरिका मे गदर पार्टी के नेताओ तथा जापान आकर भारत के शीर्षस्थ क्रातिकारी र बिहारी बोस से भेट । चीन मे आकर नेताओ से भेट ।

बीच ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने दूतावास के माध्यम से बराबर क्रातिकारी राजा की खोज-खबर ।

भारतीय समाचार-पत्र और नेताओ से भी सबध । प्रताप, स्वराज्य, वदेमातरम् आदि स्वातत्र्य प्रिय पत्रो मे राजा महेद्र-प्रनाप के लेखो का प्रकाशन । साथ ही काग्रेस के युवक नेता प० जवाहरलाल नहरू मे भी पत्र-व्यवहार । १८२५ मे अमेरिका जाने पर गदर पार्टी द्वारा सम्मानित सदस्यता प्रदान ।

तिब्बत की यात्रा

इसी समय तिब्बत जाने के लिये चीन मे आगमन । एक ही मच से चीनी जन नेत्री श्रीमती सान्यात् सेन के साथ भाषण । यही पणछेन लामा से भी भेट । इसी वष ६ नवबर को तिब्बत मे प्रवेश । चामडो से दलाई लामा को हिंदी मे पत्र । दलाई लामा द्वारा ल्हासा न आने का परामश ।

१९२६ की गर्मी मे जापान मे होनेवाली पान एशियाटिक कान्फ्रेस मे जापान आने का निमत्रण । जापान पहुँचने पर पुलिस द्वारा बदरगाह पर न उतरने का आदेश । बहुत कहने-सुनने पर १० दिन ठहरने की आज्ञा । निर्धारित अवधि बीतने पर पुलिस द्वारा जबरदस्ती जापान से भेज देना ।

बाद मे, फ्रास मे प० नेहरू और जमनी मे प्रसिद्ध भारतीय नेता श्रीशिवप्रसाद गुप्त से भेट ।

१९२९ मे अफगान सरकार द्वारा सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण काय का दायित्व सौपना और राजा महेद्रप्रताप का अमेरिका

प्रस्थान-उद्देश्य अफगानिस्तान के लिये अमेरिकी पूजी आकर्षि
करना ।

ओर १५ अगस्त, १९४७ के बाद एक दिन वह क्रातिका
स्वदेश लोट रहा है । ओह, ३ दशक मे भी अधिक बीत गए
जननी जन्म भूमि के दर्शन हुए, लेकिन लेकिन कोई बा
नही, अब वह परतत्रता की बेडियो से मुक्त अपनी स्वतत्र जन्म
भूमि के दर्शन कर रहा है । ३२ वर्ष के कर्मयोग की साधन
सफल हुई है, देशभक्त की चिरसचित आकाक्षाएँ पूर्ण हुई ,
उसकी प्रतिज्ञा का निर्वाह हुआ है ।

दुखात चित्र

लेकिन यह क्या, वही क्रातिकारी अपने भग्न हृदय
साथ आज स्वदेश मे वापस जाना चाहता है । कहता है, ब
घुटन महसूस हो रही है यहाँ । देश की स्वतत्रता के लि
अपनी जान हथेली पर रखकर ३२ वर्षो तक विदेशो व
खाक छाननेवाला यह देश-भक्त देश स्वतत्र हो जाने पर १७ व
मे ही अब यहाँ से भागना चाहता है । पता नही, यह उसव
दुर्भाग्य है या देश का । परतु अब यह देश-भक्त जाए
कहाँ ? क्या करेगा ? आखिर, ओर फिर किसके लिये—व
भी जीवन के इस सध्याकाल मे, जब कि वह श्रात-क्ला
होकर अभी-अभी अपनी मजिल पर पहुँचा है । तो क्या व
देश-भक्त !

"नही-नही"—मै आत्मसुधि-हीन दर्शक की भाँति बीच

ही चिन्ता पडना हू।' ऐसा नही हो सकता। "तुम्हे इसी देश मे रहना है यही काम करना है।"

तब तक चलचित्र की रील आगे बढ जाती है। वही क्रान्तिकारी फिर सामने आता है और कहता है—

मेरी जिदगी एक मुसलसिल सफर है,
कि मजिल पे पहुचे तो मजिल बढा दी।

और इस शेर के साथ चलचित्र की रील एक झटके के साथ रुक जाती है। मै बुदबुदाता हूँ—चलचित्र की कथा तो बडी दुखान्त रही। तभी मेरे हृदय ने मानो मेरे कधे पर एक महदशक मित्र की भाति हाथ रखकर कहा—"ऐसी सफल और सशक्त कथाएँ दुखान्त ही हुआ करती है मेरे मित्र!"

अब मेरी आँखो के सामने कोई चलचित्र नही है। बस, राजा महेद्रप्रताप के कुछ पत्र और उनका अखबार है, जिनके कुछ शब्द मै पढता हूँ—"अभी देश मे वास्तविक क्राति शेष है। हमे ईरान से अफगानिस्तान और भारत तक 'आर्यान' की स्थापना करनी है और मानसिक गुलामी से अपने को छुडाने के लिये राष्ट्रमडल से मुक्त होना है।"

❀

३

फील्डमार्शल लद्दाराम

बात बस पिछले साल की है। मै कार्यालय मे अप
टेविल पर बैठा कुछ कार्य कर रहा था। तभी एक अत्य
व्यक्तित्व-विहीन, कृशकाय वृद्ध मेरे सामने आ खडा हुआ। मै
ऊपर निगाह उठाई, तो उस वृद्ध को मौन खडे देखव
मैने अत्यत विनम्रता से पूछा—"कहिए, किसे चाहते है आप ?
यह पूछने के साथ ही मेरे मन ने मानो यह कहा कि जो साध
रण-सा व्यक्ति तुम्हारे समक्ष खडा है, वस्तुत वह बहु
असाधारण हे। तभी उस वृद्ध ने भी प्रश्न किया, "क
व्यासजी आप ही है ?" मैने सिर हिलाया ही था कि दूस
क्षण वह वोल उठा—"मै लद्दाराम" हूँ।"

'ओह, क्रांतिकारी-शिरोमणि फील्डमार्शल लद्धाराम," और तभी मैंने उनके चरण-स्पर्श कर लिए।

८२वर्षीय लद्धारामजी से यह मेरी भेंट तो अवश्य पहली थी, किन्तु ऐसी बात न थी कि मै उनके महान् कृतित्व से परिचित न था। मै भली भाँति जानता था कि १९१० मे प्रयाग के उर्दू 'स्वराज्य' के संपादक की हैसियत से ३ राज-द्रोहात्मक लेख लिखने पर उन्हे १०-१० वर्ष की ३ सजाएँ हुई थी, और उन्हे अडमान की जेल मे भेज दिया गया था। लद्धारामजी से पूर्व 'स्वराज्य' के ४ अन्य वीर सपादको को प्रखर राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति के लिये क्रमशः कालेपानी की सजा हो चुकी थी। काले पानी की सख्त सजा के लिये यह जेल कुख्यात था और यहाँ के निर्दय जेल-अधिकारी मानो साक्षात यमदूत थे। लेकिन लद्धारामजी ने इन यमदूतो से भी टक्कर ली और विजय प्राप्त की। फल-स्वरूप उन्हे ४ साल बाद ही पुनः भारतीय जेल मे भेज दिया गया।

इन वीर लद्धारामजी को मैंने एक क्रांतिकारी सम्मेलन मे भाग लेने के लिये आमन्त्रित किया था। ये कई दिन मेरे साथ ठहरनेवाले थे, अतएव यह निश्चितता थी कि इनसे खूब जमकर बाते होगी ही।

अडमान की जेल मे कोल्हू की मसक्कत

रात मे जब लद्धारामजी खा-पीकर बिस्तर पर लेटे, तो मैंने उनके अडमान जेल-सबधी सस्मरण सुनने की इच्छा

व्यक्त की। उन्होने वताया कि "१९११ के प्रारभ मे जब मै अडमान की सलुलर जेल मे दाखिल हुआ, तो उसके खूख्वार जेलर स भेट हुई। जेलर ने स्वभावत पहले ही मुझ पर रोब जमाने की कोशिश की, और बहुत-सी हिदायते दी। जब उसकी हिदायते खत्म हो गई तो मैने पूछा "जेलर साहब, कोई और आयत बाकी हो तो वह भी मुझे आज ही बता दो।' जेलर ईसाई था, अतएव उसे 'आयत शब्द बहुत बुरा लगा, और उसने कहा—"वेल लद्दाराम, मै तुमको देख लेगा। तुम बहुत बदमाश लगता है। दूसरे दिन ही जेलर ने मेरे टिकट पर कोल्हू की मसक्कत लिख दी, जिसमे रोजाना एक आदमी को ३० पाउड नारियल का तेल निकालना पडता था। मैने यह मसक्कत करने से साफ इनकार कर दिया, और कहा कि यह भैसा का काम है। यदि इस काम को करने का नियम ससद या विधानमडल ने बनाया है, तो उसका एक भी सदस्य यह मेहनत एक दिन करके दिखा दे, मै चार दिन करूँगा। यदि जेलर साहब एक दिन करके दिखा दे, तो मै लगातार ८ दिन करूँगा। मेरी उस बात से जेल-अधिकारी बहुत परेशान हुए और उन्होने मुझे खडे हाथ पर हथकडी लगाकर दीवार के साथ बाँध दिया। कोल्हू की अपेक्षा यह सजा कम कष्टदायी थी, इसलिये मैने इसके लिये जेलर को धन्यवाद दिया। इस पर वह जल-भुन गया। बाद मे मैने चीफ कमिश्नर से शिकायत की, जो एक दिन मुआयने के लिये आए थे कि विना डॉक्टरी जॉच के ही मुझे इतनी मेहनत का काम दे

दिया गया । उन्हे मुझ पर दया आ गई और मै डॉक्टरी जाच के लिये भेज दिया गया । फिर मै शेष राजनीतिक कैदियो के साथ ही रहने लगा । लेकिन यहॉ भी मैने एक आदोलन चलाया कि हम सभी को किताबे पढने के लिये दी जायॅ । इस पर मुझे कडी सजा दी गई । तब मैने अनशन शुरू कर दिया । एक दिन डॉक्टर जबरदस्ती दूध पिलाने आए, तो मैने उन्हे काट खाने की धमकी दी । किसी प्रकार यह अनशन पैंतीस रोज चला ओर अनत हम सभी को किताबे पढने की अनुमति मिली ।"

रात काफी हो चुकी थी, अतएव मैने लद्दारामजी से अब सो जाने का आग्रह किया । दूसरे दिन प्रात जब हम जल-पान पर बैठे, तो मैने लद्दारामजी से पुन अपनी कहानी जारी रखने का अनुरोध किया । वह बोले—"जब सरकार को हमारी इन बातो की खबर दी गई, तो ऊपर से यह हिदायत आई कि इन कैदियो पर खूब सख्ती की जाय । तभी एक दिन सुप-रिटेडेट कैप्टेन मरी मुआयने के लिये आया । उस दिन वह शरारत के मूड मे था । उसने परेड मे खडे मुझे देखा और मेरा टिकट पकड लिया । लेकिन मै उस दिन मरीज की सूची मे था । अतएव उसने मेरे बगल मे खडे हुए दूसरे क्रातिकारी इदुभूषणराय का टिकट ले लिया ओर उस पर रामबॉस की मसक्कत लिख दी । रामबॉस के नाम से ही कैदियो का दिल दहल जाता था । इसमे एक तरह का तेजाबी रस रहता है, जिसके छू जाने से बदन मे खुजली होने लगती तथा हाथ की चमडी को उधेड देती है ।

"इस मसक्कत का करने से इदुभूषण की हालत बहुत बिगड गई। उसके हाथ जवाब देने लगे। उन्होने तग आकर जेलर से अपना हाल कहा और हाथो की दुदशा दिखाई। इस पर जेलर ने उन्हे बहुत गदी गाली दे दी। बेचारे इदु-भूषण को बडा सदमा पहुँचा, और उन्होने उसी रात अपना कुर्ता फाडकर उससे फासी लगा ली। हालाँकि खतरे की घटी बजाई गई, लेकिन कोई अधिकारी उनकी कोठरी की चाभी लेकर आया ही नही, बल्कि वे लोग दूसरे दिन भी बहुत देर मे आए। एक दूसरे क्रातिकारी उल्हासकर दत्त के साथ भी बहुत अमानुषिकता बरती गई, जिससे उनका दिमाग ही फेल हो गया। मुझे भी उन दिनो बुखार आने लगा था। अतएव मुझे सब कपडे उतारकर एक ठडो कोठरी मे बद कर दिया गया। कुछ दिन बाद एक बार जलर उधर से निकला तो मैने पूछा, "श्रीमान्‌जी, किस चिकित्सा-शास्त्र मे बुखार उतारने की यह विधि लिखी है ?" उसके मुँह से निकल पडा—"दिस इज कॉल्ड स्लो प्वायजनिग एड ज्यूडीशियल डेथ (यह धीरे-धीरे जहर देकर कानूनी मौत लाना है)।'

"उन्ही दिनो एक भारतीय जमादार ३ महीने की छुट्टी पर भारत जा रहा था। मैने उसको पटा रक्खा था। अतएव वारीद्र घोष (अरविद घोष के भाई) मे सलाह करके उसके हाथ एक पत्र 'बगाली' के सपादक सुरेद्रनाथ बनर्जी के पास भिजवा दिया, जिसमे जेल का कच्चा चिट्ठा था। श्रीबनर्जी ने इसे समाचार-पत्र मे छाप दिया, जिससे पूरे बगाल मे तहलका

मच गया। जगह-जगह सभाएं और प्रदर्शन हुए और एक जाँच-कमीशन नियुक्त करने की माँग की गई। एक सरकारी मेंबर सर क्रैडक वहां आया भी, लेकिन उससे कुछ फर्क न पड़ा। कैप्टेन मरी ने तंग आकर वाइसराय - कौंसिल से पूछा कि क्या इन कैदियों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार किया जा सकता है ? इस पर उन्हें यही जवाब मिला कि ये खतरनाक कैदी है, इनके साथ अच्छा व्यवहार न किया जाय। इस पर मैंने तथा दो अन्य क्रान्तिकारियों ने अपने को साधारण कैदी मानना अस्वीकार कर दिया और काम करने से भी इनकार कर दिया। हम तीनों पर जेल की दफा ५१ के अंतर्गत मुकदमा चला, और मेरी सजा एक साल और बढा दी गई। लेकिन इस दफा में यह भी लिखा था कि यही सजा दुबारा नहीं हो सकती। अतएव जेलर से मैंने कहा कि अब तो मैं अकड़कर चलूँगा। तुमने अपने सारे अधिकार समाप्त कर दिए हैं। वह शर्मिंदा होकर चला गया, और चौथे दिन ही मुझे तथा दो अन्य कैदियों को जहाज पर बैठाकर कलकत्ते रवाना कर दिया गया। इसके बाद मैं सात साल तक कैनानोर और वेलोर की जेलों में रहा।"

और जब लद्दाराम फील्डमार्शल बने

जिस समय लद्दारामजी मेरे यहाँ थे, उसी दौरान अमर-शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' की क्रांतिकारिणी बहन श्रीमती शास्त्री देवी भी आ गई थीं। हम लोग खाना खाने पास

के होटल मे जाया करते थे, अतएव आने, जाने और खाने के समय भी बातचीत का काफी मौका मिल जाया करता था। तभी एक समय मैने लद्दारामजी से पूछा था कि उनके साथ अडमान मे कौन-कौन से क्रान्तिकारी थे? क्या वीर सावरकर भी उनके साथ थे? इस पर लद्दारामजी ने बताया, "मेरे वहाँ जाने के कुछ समय बाद ही वीर सावरकर आए थे। साथ ही वारीद्र घोष, वीर सावरकर के बडे भाई गणेश सावरकर, हेमचद्रदास, उल्हासकर दत्त सुधीरकुमार सरकार-जैसे शिखर के क्रांतिकारी उस समय अडमान जेल मे थे। इन लोगो के साथ रहकर मै अपने बडे-से-बडे कष्टो को भूल गया था। उस समय तक मेरे मन मे देश के लिये मर मिटने की भावना तो थी लेकिन राजनीति का कोई विशेष अध्ययन न था। वीर सावरकर के सपर्क मे आने से मुझे राजनीति का तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ। अक्सर हम लोग बैठकर देश की स्थिति के बारे मे विचार-विमर्श किया करते थे। उन्ही दिनो मेरे ज्वलत विचारो के कारण मुझे फील्डमार्शल लद्दाराम कहा जाने लगा था।"

लद्दारामजी सूफी अबाप्रसाद को ही एक तरह से अपना गुरु मानते है। उन्होने इस सबध मे बताया कि "१९०८ मे एक बार मै भी चीन तथा आस-पास के देशो मे गया था। जहा मैने स्वतत्र देशो के नागरिको की अपेक्षा भारतीयो के साथ बडा खराब व्यवहार देखा। इसके बाद मै सूफी अबाप्रसाद से मिला और यह अनुभव उनसे बताया। इस पर उन्होने यही कहा, 'इसका एकमात्र इलाज स्वराज्य ही है। गैर की

गुलामी मे हम कभी इज्जतदार आदमी नही बन सकते ।' यह बात करते-करते सूफीजी गभीर हो गए, और उनकी आखो मे आँसू आ गए। वह बोले 'देश की आजादी का काम कई पीढियो तक चलाना होगा, तब कही देश आजाद होगा। मैंने इतने वर्षो तक यू० पी० मे काम किया, लेकिन आज तक मुझे ऐसा आदमी नही मिला, जो मेरे बाद इस काम को आगे बढा सके।' मैने तुरत उनके पैर छू लिए और कहा कि मै इसके लिये तैयार हूँ, और अपना जीवन अर्पित करता हूँ। इसके बाद मै कुछ समय तक उनके साथ ही रहा। उनका गुरुमत्र बस यही था कि निभय होकर जियो।"

लेकिन यह विडबना तो देखिए कि लद्दाराम-जैसे जिन क्रातिकारियो ने देश की आजादी के लिये सरबस्व होम कर अपने को भी मोमबत्ती की भाँति तिल-तिल जलाया, वही आज देश आज़ाद हो जाने के बाद भी जीवन की आवश्यक सुविधाएँ तक नही जुटा पाए।

स्वतत्र भारत मे उनकी दुदशा की कथा उस समय शुरु होती है, जब उन्होने सरकार से कोई उद्योग-धधा स्थापित करने के लिये २ हजार का कर्ज लिया। विभाजन के बाद वह अलीगढ-जिले के एक गाँव मे आकर बसे थे। लेकिन उनके स्वाभिमानी अव्यावहारिक स्वभाव के कारण स्थितियाँ ऐसी आ गई कि लद्दारामजी की जीविका का एकमेव साधन उनकी चक्की नीलाम कर दी गई और लगी लगाई फसल भी पानी के भाव बेच देनी पडी। इतना ही नही, उनकी दूसरे

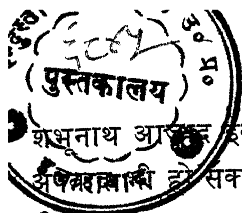
साल की फसल भी ऐसे ही बेची गई और दो वर्षो तक अन्न का एक दाना भी उन्हे न मिल सका।

इन दो साल के दौरान मे कई दिन और रात ऐसे बीते जब उस स्वाभिमानी के मुँह मे दाना तक न गया, काटेदार और ऊबड-खाबड धरती पर जूते-विहीन पैरो से ही चलना पडा। यही नही, वरन् कुछ बकाया न चुका सकने पर २१ दिसबर, १९६२ को उन्हे स्वाधीन भारत की कोल तहसील (जिला अलीगढ, उत्तर प्रदेश) स्थित जेल की हवा खानी पडी। क्या आप और हम आजादी के इस दीवाने के हृदय की वेदना का अनुमान लगा सकते हे, जो देश की आजादी के लिये काले पानी तक की जेल काटता रहा और आजादी मिलने के बाद ८३ वष की आयु मे भी जेल ने उसका पीछा न छोडा! आज यह महान् क्रातिकारी वृद्ध और असहाय दिल्ली की एक कोठरी मे अपने अतिम दिन गुजार रहा है।

४

शभूनाथ आजाद

शभूनाथ आजाद देश के उन क्रातिकारियो मे से है, जिनका जीवन आज भी मानो यह पुकार-पुकारकर कह रहा है कि देश के लिये मरना यदि शहादत है, तो देश के लिये जिदा रहना शायद उससे भी कोई बडी चीज है, क्योकि देश के लिये जो मर गया, वह तो शहीद हो गया, पूजनीय हो गया और इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ बन गया, लेकिन जो सच्चा क्रातिकारी कही अपने दुर्भाग्य या सौभाग्य से बच गया और उसने देश के लिये जीने का निश्चय किया, तो उसकी क्या दशा होती है और देश उसके साथ क्या सलूक करता है,



शभूनाथ आजाद इसी का एक नमूना है। श्रीआजाद के कुछ अपवाद भी हो सकते है, और है भी, लेकिन वे है तो अपवाद ही।

देश के लिये जीनवालो के साथ देश क्या सलूक करता है, इसका भान मुझे ऐसा नहीं कि पहलेपहल शभूनाथजी आजाद ने ही कराया हो, यह मुझे उनसे परिचय के पूव ही था। हाँ, वे मुझे इसके ज्यादा सटीक उदाहरण जान पडे। आजादजी का कर्मशील जीवन परिस्थिति-निरपेक्ष रहा है। जिस समय सरदार भगतसिह और बिस्मिल-जैसे क्रातिकारी नेताओ को फासी की सजा हो गई और चद्रशेखर आजाद-जैसे क्राति-कारी-शिरोमणि को पुलिस से मुठभेड मे प्राण त्यागने पडे, उस समय स्वाभाविक रूप से, कुछ समय के लिये क्राति-कारियो मे निराशा व्याप्त हुई, जैसे युद्ध-क्षेत्र मे नेता के मरने से सेना मे होती हे। लेकिन शभूनाथ आजाद ने निराशा की भावना उस समय भी मन मे न आने दी, तथा १९३२ मे, अमृतसर मे, क्रातिकारियो की एक गुप्त बैठक करके यह तय किया कि दक्षिण-भारत मे क्रातिकारी आदोलन का विस्तार किया जाय। इस बैठक मे गोविदराम वर्मा, रोशनलाल एव बतासिह उपस्थित थे। इन लोगो ने मदरास मे पहुँचकर प्रात के गवर्नर तथा वहाँ आए हुए बगाल के गवर्नर, दोनो पर बम गिराने का फैसला किया। किंतु इसी बीच उन्हे अपने कार्य मे धन के अभाव का अनुभव हुआ, क्योकि निजी स्रोतो से जो धन आनेवाला था, वह न आ सका था। इसके लिये उन्होने

ऊटी बैंक लूटने की योजना बनाई और क्रियान्वित करने मे सफल हुए । यह बात लगभग एप्रिल, १९३३ की है ।

अँधेरी रात और वह बम का परीक्षण

लेकिन दुर्भाग्य से ऊटी-काड के क्रातिकारी नित्यानद और खुशीराम मेहता एक स्टशन पर पुलिस से मुठभेड मे गिरफ्तार कर लिए गए । इनके गिरफ्तार हो जाने से पुलिस को क्रान्तिकारियो की सारी योजनाओ का ज्ञान हो गया । इसके बाद आजादजी और उनके साथी अधिक सतर्क हो गए तथा एक बडी सख्या मे बम बनाने का निश्चय किया ।

मदरास मे बम बनाने की जो भी सामग्री उपलब्ध थी, उसे चुपचाप इकट्ठा करके इन लोगो ने बम बनाया और अपने सहयोगी रोशनलाल को उसके परीक्षण के लिये भेजा । रात का गहन अधकार था । रोशनलाल हाथ मे बम लिए हुए मदरास के रामपुरम् समुद्र-तट पर जा रहे थे । पुलिस के बचाव के लिये शभूनाथ आजाद तथा उनके दो साथी भी विभिन्न दिशाओ मे कुछ दूर खडे हुए थे । अचानक बम का जोर से धडाका हुआ, जिसकी आवाज मीलो तक गूज उठी । चौकसी करनेवाले इन साथियो को विश्वास हो गया कि बम का परीक्षण सफल हुआ । लेकिन भगवान् को कुछ और ही मजूर था । जब काफी देर तक युवक रोशनलाल न लौटे, तो ये लोग उन्हे ढूँढने निकले । तट पर जो इन्होने दृश्य देखा, वह बडा हृदयविदारक था । रोशनलाल का क्षत-विक्षत शरीर वहाँ पडा था । ऐसा अनु-

मान है कि जब रोशनलाल बम हाथ मे लिए हुए तट के पत्थरो को पार कर रहे थे, अधकार मे उनका पैर फिसल गया और बम हाथ से गिरकर दग गया, जिसने अपने उस एक निर्माता के भी प्राण ले लिए।

स्वाभाविक था, इस घटना के बाद पुलिस सतक हो गई थी, और उसको यह आशका हो गई थी कि आफत के परकाले क्रातिकारी अब उत्तर से दक्षिण मे भी पहुँच गए है। एक दिन जब आजादजी अपने साथियो-सहित घर मे बैठे हुए थे, तभी घर की मालकिन पुलिस को लेकर वहाँ पहुँच गई। कुडी खटखटाने पर जब इन लोगो ने सूराख से सशस्त्र पुलिस को देखा, तो चटपट वहाँ मौजूद अनेक गुप्त कागजातो को जला दिया, तथा ऊटी बैंक के नोटो को भी नष्ट कर दिया। इसके बाद ये वीर कोठे पर आ गए। दानो ओर से गोलिया चलने लगी। इसी बीच उधर से मुहरम का जुलूस निकला। पुलिस ने इस समय मुसलमानो से झूठ-मूठ यह उडा दिया कि हम लोग डाकुओ से लड रहे है, आप लोग भी मदद कीजिए। अतएव वह सारी भीड पुलिस के साथ मिलकर क्रान्तिकारियो से लडने लगी। तब इन लोगो ने देश-भक्ति के नारे लगाए और जनता की ओर हवाई फायर करके किसी प्रकार उन्हे तितर-बितर किया।

इस प्रकार शाम तक दोनो ओर से जमकर सघर्ष होता रहा। इधर क्रातिकारियो के पास गोलियाँ खत्म हो रही थी, उधर पुलिस की सहायता के लिये नई टुकडी आ रही थी।

अतत आजाद-महित कई क्रातिकारी गिरफ्तार कर लिए गए। इनके साथ गोविदराम वर्मा-नामक क्रातिकारी नवयुवक था, जिनको निदय और अन्यायी पुलिस न उस समय गोली मार दी, जब वह आत्मसमपण के लिये घर के कमरे से बाहर निकले। अस्पताल जाकर इनकी मृत्यु हो गई।

जब मदरास की जनता को क्रातिकारियो के इस साहस ओर बलिदान का पता चला, तो वह भारी सख्या मे इनके दशन करने आई। बाद मे 'मदरास-बम-केस' के नाम से आजाद तथा उनके साथियो पर मुकदमा चला, और उन्हे कालेपानी की सजा देकर अडमान भेज दिया गया। आजादजी ने २० वप तक जेल का कठिन जीवन व्यतीत किया। कालेपानी मे क्रातिकारियो को कितनी यातनाएँ सहनी पडती थी, इसका कुछ आभास अवश्य पाठको को होगा।

आजादी के बाद

वतमान शताब्दी के चौथे दशक के अत तक देश के प्राय सभी प्रमुख क्रातिकारियो को फाँसी या लबी सजाएँ हो चुकी थी। कुछ क्रातिकारी ऐसे भी थे, जिन्हे क्राति के आदर्श से अनास्था हो गई थी। अतएव क्रातिकारी-आदोलन अपना प्रभावी रूप खो चुका था। यद्यपि उसकी चिनगारी बुझी नही थी, जो बाद मे आजाद हिद फौज और नौसेना-विद्रोह के रूप मे ज्वाला बनकर पुन प्रकट हुई। जिस समय क्रातिकारी-आदोलन विभिन्न कारणो से कुछ दब गया, तो अनेक पुराने

क्रातिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, हिंदू महासभा आदि दलो मे चले गए । क्रातिकारी-शिरोमणि वीर सावरकर, आशुतोष लहडी आदि का हिंदू महासभा मे जाना सवविदित है । इसी प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी ने भी बगाल तथा अन्य प्रातो के अनेक क्राति-कारियो को अपनी ओर आकर्षित किया । श्रीशभूनाथ आजाद भी स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्य-कर्ता बन गए । शारीरिक अक्षमता के कारण अब वह पार्टी मे सक्रिय काय करने मे असमर्थ है । मै उनके वतमान विचारो से सहमत हूँ या नही, यह एक अलग प्रश्न है । सभव है, अनेक देशवासी भी उनसे सहमत न हो, और उनके वतमान राज-नीतिक विचारो का कोई विशष महत्त्व भी नही है। सिर्फ महत्त्व है उनके उन बलिदानी कार्यो का, जो उन्होने देश की आजादी के लिये किए ।

❀

५

अमीरचद बबवाल

उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रात के क्रातिकारी नेता श्रीअमीर-चद बबवाल के सबध मे श्रद्धेय प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे बहुत कुछ बता रक्खा था, और उनकी बडी इच्छा थी कि मै ७६ वर्षीय इस क्रातिकारी वीर से अवश्य मिलूँ। अतएव सितबर, १९६२ की किसी तारीख को मै बबवालजी को पूव सूचना देकर उनसे मिलने के लिये लखनऊ से चल पडा। प्रात १० बजे देहरादून पहुँचकर सीधे उनके घर पहुँचा, तो पता चला कि वह मुझे लेने स्टेशन ही गए है। मैने कहा—"उनसे तो मेरी पहले कोई मुलाकात हुई नही, तो वह मुझ पह-

चानते कैसे है ?" इस पर माताजी (उनकी धर्मपत्नी) ने कहा—"उन्होने पत्रिका मे आपकी फोटो देखी थी।" मै आश्चर्य मे पड गया। क्या केवल अस्पष्ट फोटो देखकर ही स्टेशन पर हजारो की भीड मे मुझे पहचाना जा सकता हे। उस समय मुझे बबवालजी के दशन से पूर्व ही उनके महान् एव सरल हृदय के दर्शन हो गए, और मै सोचने लगा कि इस वयोवृद्ध क्रातिकारी के महान् कमशील जीवन का रहस्य उसके हृदय की यह महानता ही है। तब तक बबवालजी भी आ गए, और मैने उनके दर्शन तथा चरण-स्पर्श कर अपने को धन्य किया।

अखबार का प्रकाशन और सरकार का काला कानून

बबवालजी ने अपना सार्वजनिक जीवन क्राति-पूर्ण पत्रकारिता से ही प्रारभ किया, और देश मे समाचार-पत्रो की स्वतत्रता के सघष के इतिहास मे अपना अग्रणी स्थान बना लिया। लाला लाजपतरायजी की प्रेरणा से उन्होने १९०५ मे सीमा-प्रात का पहला अखबार 'फ्रटियर ऐडवोकेट' निकाला, जो उस प्रदेश मे राष्ट्रीय जागरण का शख फूँकने लगा। शीघ्र ही यह अखबार वहाँ की राष्ट्रीय जनता मे अत्यत लोक-प्रिय हो गया। विदेशी सरकार को वह भला फूटी आँखो भी क्यो सुहाता, अतएव वह पहला अखबार था, जो नवनिर्मित प्रेस-कानून का शिकार बनाया गया। इस अखबार मे प्रकाशित ४ लेखो पर, जिनमे से ३ महामना मालवीयजी की प्रेरणा से

लिखे गए थे, सरकार ने आपत्ति प्रकट की तथा अखबार और प्रेस से ४ हजार की जमानत मागी। इस अखबार के सबध मे सरकार की अव-कोप-दृष्टि एव अन्याय-पूर्ण नीति इसी से प्रकट है कि जिन लेखो पर आपत्ति प्रकट की गई थी, वे उक्त काले कानून के बनने से भी कई सप्ताह पूर्व प्रकाशित हुए थे। बबवालजी जमानत देने मे असमर्थ थे, अतएव राष्ट्रीय क्राति का शख फूकनेवाला यह पत्र एप्रिल, १९१० मे बद हो गया, और इस प्रकार देश मे स्वतत्र पत्रकारिता की बलि-वेदी पर प्रथम बलिदान हुआ।

बबवालजी का एक साल के लिये सीमा-प्रात से निष्कासन कर दिया गया। इसके बाद आप दिल्ली के 'आकाश' अखबार मे आ गए, जिसमे आपके साथ 'हार्डिंग्ज-बम-केस' के हनुमत-सहायजी भी थे, जो इस केस के आज एकमेव जिदा सहयोगी है।

बबवालजी लोकमान्य तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मानते है। सन् १९०७ मे आप पेशावर मे स्वदेशी का प्रचार करते हुए गिरफ्तार हुए। इस वर्ष के अत मे, सूरत मे, काग्रेस-अधिवेशन होनेवाला था, जिसमे आप छूटने के बाद भाग लेने पहुँचे। यही लोकमान्य तिलक से आपकी भेट हुई। उसी समय का एक रोचक सस्मरण है। २५ दिसबर को काग्रेस का खुला अधिवेशन था। किसी ने काग्रेस-अध्यक्ष-पद के लिये रासविहारी घोष का नाम प्रस्तावित किया। सुरेद्रनाथ बनर्जी इसका समर्थन करने के लिये खडे हुए। वह कुछ ही देर बोल

पाए थे कि लोकमान्य तिलक ने खडे होकर कहा—"मै इसका विरोध करता हूँ।" नर्म दलवाले इस पर आश्चय-चकित रह गए। पडाल-भर मे काना-फूसी होने लगी। इस पर स्वागताध्यक्ष ने एक वैधानिक प्रश्न उठाकर लोकमान्य तिलक को बोलने से मना किया। फल-स्वरूप जनता मे रोष उत्पन्न हुआ, और वहाँ भीषण शोर-गुल प्रारभ हो गया। तिलक के पक्ष मे यह वातावरण देखकर स्वागताध्यक्ष ने नियमो की चिना किए विना ही बैठक स्थगित कर दी। दूसरे दिन बैठक शुरू होने पर भी यही स्थिति रही तथा जनता ने सुरेद्रनाथ बनर्जी—यहाँ तक कि प० मोतीलाल नेहरू का भी भाषण नही सुना। अतन तिलकजी डट गए और कहा—"हिम्मत हो, तो मुझे मच से हटा दो।"

इसी बीच किसी नर्मदलीय ने तिलकजी पर जूता फेका, जो सर फीरोजशाह मेहता और सुरेद्रनाथ बनर्जी के निकट जाकर गिरा। ये लोग उनके पास ही बैठे थे। इस पर पजाब के प्रतिनिधि, जिनमे बबवालजी भी थे, तिलकजी को चारो ओर से घेरकर खडे हो गए। इतने मे ही एक दूसरा जूता फेका गया, जो सयोग से बबवालजी के माथे पर लगा और उनके सिर से खून की धार बह चली। खून इतना निकला कि तिलकजी के कपडो का कुछ भाग भी उससे रँग गया। आज भी बबवालजी के माथे पर उसका निशान बना है, जिसे वह तिलक का तिलक मानते है।

बाद मे, १९१९ की अमृतसर-काग्रेस मे, तिलकजी ने बबवालजी के माथे के उस तिलक को देखा, और अपने कई मित्रो

को भी उसे दिखाकर सबधित घटना का स्मरण कराया। वत्रवालजी को एक और बडा सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह माडले (वर्मा) जेल की उसी बैरक मे रहे है, जहाँ लोकमान्य तिलक ने बदी जीवन मे इस युग की सर्वाधिक महत्त्व-पूण पुस्नक 'गीता-रहस्य' लिखी। आप १९१९ मे रौलट ऐक्ट के त्रिरुद्ध्र सीमा-प्रात मे मत्याग्रह आयोजित करने पर १८१८ के वगाल के काले कानून के अतगत माडले भेजे गए थे।

बम बनाने की शिक्षा

सूरत - काग्रेस मे ही बबवालजी की अरविद घोष एव उनके छोटे भाई वारीद्र घोष से भेट हुई। वारीद्र से ही आपने बम बनाने की शिक्षा प्राप्त की। स्वतत्रता-प्राप्ति के लिये बम और पिस्तोल का सहारा आपने १९१९ तक ही लिया। इसके वाद आपने अनुभव किया कि देश की स्वतत्रता शाति-पूण आदोलनो से ही प्राप्त की जा सकती हे। १९१९ की जेल-यात्रा आपकी इसी परिर्वातत विचार-धारा के अतर्गत हुई थी।

भारत की क्राति-पूण पत्रकारिता मे 'स्वराज्य' (उदू) का अत्यत महत्त्व-पूर्ण योगदान है, जो नवबर १९०७ मे, इलाहाबाद मे, श्रीशातिनारायण द्वारा प्रारभ किया गया था। इसके वारे म 'रौलट रिपोर्ट' मे लिखा गया था—"इन शाति-पूण प्रातो मे 'स्वराज्य' क्रातिकारी-आदोलन की दिशा मे प्रथम सुदृढ एव स्थिर कदम है। इस पत्र की ध्वनि पहले

से ही विरोधी रही और बाद मे तो उसने तीखे विद्रोह का रूप ले लिया।" इस पत्र की जो बलिदानी परपरा रही, वह विश्व की पत्रकारिता मे भी शायद ही किसी की हो। इसने ३ साल के अपने छोटे-से जीवन-काल मे राष्ट्रीय पत्रकारिता की बलि-वेदी पर ८ सपादको का बलिदान किया, जो एक के बाद एक 'स्वराज्य' को मिलते रहे। इनमे से ४ (होतीलाल वर्मा, बाबूराम हरी, महात्मा नदगोपाल और लद्धाराम) को काले पानी की सजा हुई। बबवालजी इस बलिदानी पत्र के अतिम सपादक थे। इन पर जव मुकदमा चला, तो अनुमान यही था कि इन्हे भी अपने पूर्व सपादको की भाति काले पानी की सजा होगी, परतु राजर्षि टडनजी की असाधारण सूझ ने उन्हे बचा दिया। इनका जो अक जब्त किया गया था, वह जनता मे प्रकाशित नही था। टडनजी ने इसी को वैधानिक प्रश्न बना दिया। सरकार को मुँह की खाकर बबवालजी को छोडना पडा। फिर भी वह चाहती थी कि इन पर दूसरा मुकदमा चलाया जाय, लेकिन बबवालजी की हथकडी जैसे ही खोली गई, टडनजी ने उन्हे भागने का इशारा कर दिया। वह समझ गए, और भागकर पजाब आ गए।

मई, १९२० मे प० जवाहरलाल नेहरू का देहरादून-जिले से निष्कासन किया गया था। बबवालजी ने पेशावर मे जन-सभा आयोजित करके सरकार के इस अन्याय-पूर्ण कदम का विरोध किया। उसी समय आप प्रात के चीफ कमिश्नर हैमिलटन ग्राट को हटाने की भी माग कर रहे थे, क्योकि उसने

गाधीजी को कुछ अपशब्द कहे थे। अतएव बबवालजी को गिरफ्तार कर लिया गया, और टाक (जिला डेरा इस्माइलखाँ) जेल भेज दिया गया। जब आपको रावलपिडी होकर ले जाया जा रहा था, तो उनकी धमपत्नी ने स्टेशन पर उनसे मिलना चाहा, किंतु उन्हे अनुमति नही दी गई। जब उन्होने इसके लिये जोर दिया, तो उन्हे भी गिरफ्तार कर बबवालजी के साथ ही जेल भेज दिया गया। सीमा-प्रात मे किसी महिला के राजनीतिक बदी के रूप मे जेल जाने की यह पहली घटना थी। इसका भी बडा व्यापक विरोध हुआ।

१९२८ मे आपने फ्रटियर ऐडवोकेट' को पुन शुरू किया। इस प्रात की राजनीति मे इस पत्र का महत्त्व-पूर्ण स्थान था। १९३० के सविनय अवज्ञा-आदोलन के दौरान इसी पत्र ने खान अब्दुलगफ्फारखाँ को 'सीमात-गाधी' की उपाधि दी, जो बाद मे सवविख्यात हुई।

१९३५ मे 'फ्रटियर ऐडवोकेट' के स्थान पर 'फ्रटियर मेल प्रकाशित किया गया, जो आज भी विभाजन के बाद देहरादून से प्रकाशित हो रहा है।

स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद बबवालजी का एक महत्त्व-पूर्ण काम था पेशावर से, अपने नेतृत्व मे नवबर, १९४७ मे शाति-स्थापनाथ प्रतिनिधि मडल लाना। इसका उद्देश्य था दोनो देशो मे अल्पसख्यको की सुरक्षा। प्रतिनिधि-मडल गाधीजी से मिला। इस बीच कश्मीर मे गडबडी शुरू हो गई थी। सरदार पटेल ने उनसे कहा कि ऐसी स्थिति मे उनका वापस

जाना ठीक नही प्राण तक का खतरा है। लेकिन गाधीजी चाहते थे कि ये लोग वापस जायँ। अनत वह इस शाति-प्रयास मे सफल न हुए। ३० जनवरी १९४८ को गाधीजी की हत्या से यह आशा भी पूर्णत समाप्त हो गई। बबवालजी को भी अपना घर-वार छोडकर भारत मे रहना पडा। देहरा-दून मे आज भी वह 'फ्रटियर मेल'-नामक अँगरेजी साप्ताहिक का सपादन, ७७ वष की अवस्था मे एक युवक की भाति, कर रहे है।

जीवन-भर उर्दू और अँगरेजी की पत्रकारिता करने के बाद भी आपका हिदी के प्रति बडा प्रेम है। १९५७ मे आप देहरादून से ही हिदी मे बलिदानी पत्र 'स्वराज्य' को जीवित करना चाहते थे, कितु कतिपय कारणो से हिदी मे 'स्वराज्य' का प्रकाशन सभव न हो सका।

❀

६

महात्मा नदगोपाल

उम दिन जब मै आगरा पहुँचकर दयालबाग के लिये रवाना हुआ, तो मूसलाधार वर्षा ने मेरा माग अवरुद्ध करने का प्रयास किया, जैसा किसी बडे कार्य को करते समय होता है। मेरे लिये यह बडा काम था—७९ वर्षीय पुराने क्राति-कारी महात्मा नदगोपाल के दशन करना, जिसके लिये मै ३०० मील से अधिक की यात्रा करके वहाँ पहुँचा था। लेकिन वहाँ पहुँचकर मुझे सबसे बडी विडबना यह लगी कि उस स्थान के ही अधिकाश लोग नही जानते थे कि वहाँ वर्षा से प्रचार और विज्ञापन से दूर रहनेवाले महात्मा नदगोपाल

कितने बडे है, देश के अन्य भागो के निवासियो की बात तो जाने दीजिए ।

तो उस वर्षा-पानी की उपेक्षा करके जब मै दयालबाग पहुँचा, तो सामान्य-सी पूछ-ताछ के बाद ही सौभाग्य-वश मै महात्माजी के दशन, करने मे सफल हो गया । जब मैने उन्हे अपना परिचय दिया, और यह बताया कि उनसे भेट करने के लिये ही लखनऊ से आ रहा हूँ, तो उन्हे असमजस-पूर्ण प्रसन्नता हुई। कहने लगे—"अरे, आपने मेरे लिये इतना कष्ट उठाया !" फिर मेरे आग्रह पर वह अपने महान् जीवन के सस्मरण सुनाने के लिये तैयार हो गए, और उनका कमशील जीवन मेरी आँखो के सामने चलचित्र-सा घूमने लगा ।

जब प्रेस जब्त कर लिया गया

महात्मा नदगोपाल का जन्म-स्थान हफीजाबाद (जिला गुजरॉवाला, पजाब) है। अन्य अनेक महापुरुषो की भाँति आपकी देश-सेवा भी पत्रकारिता के माध्यम से ही प्रारभ हुई । सन् १९०६ मे आप लाहौर के 'आय गजट' के सपादक हुए । उसी वर्ष आपने इसे छोड दिया और राष्ट्रीय क्राति के प्रभावी उद्घोष के उद्देश्य से वही से 'इन्कलाब'-नामक पत्र शुरू किया । यह पत्र उन्ही के प्रेस 'कौमी प्रेस' मे छपता था । शीघ्र ही आप पर विदेशी सरकार की कुपित शनि-दृष्टि हो गई, और फल-स्वरूप मुकदमा दायर कर दिया गया । प्रेस भी जब्त कर लिया गया । प्रदेश काग्रेस के प्रधान लाला दुलीचद बैरिस्टर

ने आपकी पैरवी की। मुकदमा हाईकोर्ट मे गया, और प्रेस की जब्ती बहाल रही।

उधर इलाहाबाद मे भी उग्र राष्ट्रीय क्राति का शखनाद करने के लिये सन् १९०७ मे शातिनारायण भटनागर-नामक एक क्रातिकारी युवक द्वारा उर्दू मे 'स्वराज्य' अखबार शुरू किया जा चुका था। इस अखबार के शुरू होते ही इस पर सरकार की कोप-दृष्टि हो गई, जो अपेक्षित ही थी। सरकार इस पत्र के प्रखर जीवन को समाप्त करने के लिये तुल गई, लेकिन यह काय उतना सरल न था, क्योकि उसको जीवित रखने के लिये बलिदानी सपादको की एक लबी कतार जो खडी थी। कुछ ही माह बाद शातिनारायणजी पर मुकदमा दायर हुआ, और उन्हे साढे तीन वर्ष की सजा हो गई। रामदासजी सुरलिया आगे बढे। उनके नाम भी वारट जारी हुआ, लेकिन वह भूमिगत हो गए। हरियाना के होतीलाल वर्मा आए, उन्हे भी काले पानी की सजा का वरण करना पडा। फिर बाबूराम हरी ने 'स्वराज्य' को अगीकार किया, फलत उन्हे भी काले पानी का सौभाग्य मिला।

इनके बाद आए नदगोपालजी। इन्होने 'स्वराज्य' का गिरता हुआ झडा अपने बलिष्ठ हाथो मे थाम लिया, और १०-११ महीने तक थामे रहे, लेकिन सरकार ने इन पर भी प्रहार किया, और स्वराज्य मे प्रकाशित ३ लेखो को लेकर मुकद्दमा दायर कर दिया। नदगोपालजी की ओर से मुकदमे का सपूर्ण व्यय-भार लाला लाजपतराय ने वहन किया।

सुप्रसिद्ध वकील रुस्तमजी ने पैरवी की, लेकिन हुआ वही, जो भारत मे अन्याय-पूर्ण ब्रिटिश न्याय अनुरूप था। उन्हे १० वष का कठोर कारावास मिला। प्रयाग की दोनो जेलो मे रखने के बाद सन् १९०९ मे उन्हे अडमान भेज दिया गया।

इसके पूर्व ही आप पर लाहौर मे एक और मुकदमा चला था, जो वहाँ से प्रकाशित पुस्तक 'कौमी इसलाह' (दो भाग) के बारे मे था। इस पर भी आपको ७ साल की सजा हुई थी।

साथ अच्छा हो, तो नरक से क्या डर

अडमान की जेल मे आप १९०९ मे पहुँचे, और साढे पाँच वष तक वहाँ खुशी-खुशी समस्त नारकीय यातनाएँ सही। कहते है, साथ अच्छा हो, तो नरक मे भी कोई गम नही। यही बात नदगोपालजी के साथ भी थी। वहाँ दोनो सावरकर बधु, वारीद्र घोष (महर्षि अरविद के अनुज), उल्हासकर दत्त, लद्दाराम आदि शीर्षस्थ क्रातिकारी उनके साथ थे। जब भी समय मिलता, बैठ जाते थे सब मिलकर, और घटो देश की स्थिति पर विचार-विमश होता रहता था।

यही से नदगोपालजी ने कुछ लेख लिखकर गुप्त रूप से बाहर भेज दिए, जिनके प्रकाशित होने पर देश-भर मे तहलका मच गया था। इनके लेखो मे अडमान मे राजनीतिक बदियो की दुर्दशा का चित्रण था। इस पर भारत-सरकार ने जाँच के लिये एक उच्च अधिकारी को भेजा। नदगोपालजी आदि

क्रातिकारियो ने शिकायत की कि उनके साथ साधारण बदियो से भी खराब व्यवहार किया जाता है। रिपोर्ट वाइसराय की कायकारिणी को भेजी गई। अतत नदगोपालजी को भारत वापस भेज दिया गया।

भारत वापस लाने पर नदगोपालजी को कराची-जेल मे रक्खा गया। वहाँ आपने जेल के इस्पेक्टर जनरल को पत्र लिखकर शिकायत की कि रोटी मे मिट्टी मिलाकर दी जाती है। इस पर उन्हे उनकी सजा मे जो दस माह की छूट (रेमि-शन) मिली थी, वह नही दी गई। फलत उन्हे पूरी सजा काटनी पडी।

नदगोपालजी उन कुछएक क्रातिकारियो मे थे, जिन्हे अनत यह अनुभव हुआ कि उग्र क्राति से देश आजाद नही होने का। इसीलिये जेल से लौटने पर आप काग्रेस का काम करने लगे। फीरोजपुर जिला - काग्रेस के आप महा-मत्री बने। इसी काल मे आपको लाला लाजपतराय के साथ काम करने का सौभाग्य मिला।

१९२२ मे आप फिर एक साल के लिये जेल गए। यह मामला शाति और व्यवस्था भग करने के अपराध से सबधित था। इस बार आप मियावाला जेल मे थे। इसके बाद भी वह काग्रेस का काम करते रहे।

१९२४ मे नदगोपालजी दयालबाग (आगरा) मे आ गए, जहाँ आज तक 'प्रेम-प्रचारक'-नामक पत्र का सफल सपादन कर रहे है।

इस प्रकार महात्मा नदगोपाल का सपूण जावन चलचित्र की भाति मेरे सामने घूम गया, तो भी मेरी जिज्ञासा शात न हुई, और मैने उनसे पूछा कि आप किन महापुरषो से विशेष प्रभावित हुए। साथ ही उनके कुछ सस्मरण भी सुनान का आग्रह किया। इस पर उन्होने लाला लाजपतराय और वीर सावरकर के नाम लिए।

निश्चय ही लालाजी ने उनके जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया था। नदगोपालजी उन्ही की कोठी मे रहते थे। लालाजी नागपुर-काग्रेस मे गए थे। कुछ लोगो ने नदगोपालजी से कहा कि लालाजी हृदय से असहयोग आदोलन के साथ नही है। इस पर नदगोपालजी ने उनसे उसके लिये अनुरोध किया था और वह सफल भी हुए थे।

सावरकरजी से अडमान मे उनकी खूब बाते हुआ करती थी। सावरकरजी ने उनसे बताया था कि लदन मे उनके सकेत पर ही मदनलाल ढीगरा ने कनल विली को गोली से उडा दिया था। उन्होने यह भी बताया कि ढीगरा का अँगरेज लडकियो के प्रति बडा आकषण था। वह प्राय उनके साथ घूमता-फिरता था।

एक दिन सावरकर ने उससे कहा—"तुम इस प्रकार मस्ती मे यहाँ घूमते हो, कुछ अपने देश की भी चिता है ?" इस पर उसने सावरकर के सामने ही एक सुई अपनी हथेली मे इस पार उस पार से निकाल दी विना उफ् किए हुए। इसके बाद ही उसने अँगरेजो के घर लदन मे ही कर्नल

विली पर जो गोली चलाई, उससे पूरी ब्रिटिश सरकार थर्रा उठी थी।

महात्मा नदगोपालजी के पास ऐसे सस्मरणो की अगाध निधि है, लेकिन मुझे उसी दिन वापस लौटना था, अतएव उस निधि का एक छोटा-सा अश पाकर ही सतोष करना पडा। यद्यपि मतोष हुआ नही, फिर भी मजबूरी थी।

*

७

प० परमानद

१३ सितबर, १९१५। लाहौर सेंट्रल जेल मे स्थापित विशेष न्यायालय ने जब उस २२ वर्षीय तेजस्वी नवयुवक को मृत्यु-दड की सजा सुनाई, तो वह हँस पडा। उस समय एक अँगरेज सरकारी वकील ने न्यायालय को सबोधित करते हुए भय और आश्चर्य-मिश्रत स्वर मे कहा था—"श्रीमान्, देखिए तो, मौत के साथ भी यह कैसा मजाक कर रहा है।"

ठीक भी था, जिनके लिये मृत्यु सबसे अधिक भयानक वस्तु हो, वे उसके उपहास की कल्पना भी कैसे कर सकते थे। इसीलिये येन-केन-प्रकारेण भारत पर अपना शासन बनाए

रखने के इच्छुक अँगरेज शासक अपनी समझ से जो सबसे बडा दड—फासी—देते थे, उसे भारतीय देश-भक्त अपना सबसे बडा गोरव ओर सौभाग्य समझते थे। तभी तो वह युवक अपन लिये मृत्यु-दड सुनकर हँस पडा था। इतनी ही नही, उसके एक दूसरे साथी को जब आजीवन काले पानी की सजा सुनाई गई, तो वह मानो गरज उठा था—"जेल की सजा को मै अपना अपमान समझता हूँ। मै मौत के इनाम का ही अधिकारी हूँ। इससे कम नही।" यह सुनकर अँगरेज न्यायाधीश और वकील स्तब्ध रह गए। कुछ तो बुदबुदा उठे—कैसे सिर-फिरे है य भारतीय, मौत तो मानो इनके लिये हँसी-दिल्लगी हो!

एक भाषण पर कत्ले-आम

आखिर अँगरेज शासको की दृष्टि मे मृत्यु के उन युवक उपहासकर्ताओ और निमत्रणदाताओ का अपराध क्या था? यही कि वे क्रमश उस गदर-पार्टी के नेता (भाई परमानद) और कायकर्ता (केहरसिह) थे? गदर-पार्टी, जो सन् १८५७ के बाद अँगरेजो से सुनियोजित रूप से विश्वव्यापी प्रयासो के आधार पर सत्ता छीन लेना चाहती थी। उसके प्रयास इतने सही और सुनियोजित थे कि २१ फरवरी, १९१५ की रात को सफलता उनके चरण चूमती। काश, दो-तीन दिन पूर्व एक युवक ने गद्दारी न की होती।

सन् १९१४ मे प्रथम महायुद्ध छिडने के बाद भारत मे सत्ता-परिवर्तन के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ देखकर गदर-पार्टी

के प्रमुख नेता लाला हरदयाल ने प० परमानद को अमरीका मे बुलाया, ताकि वह विभिन्न देशो से भारतीय क्राति के लिये आवश्यक सहायता और सहयोग के लिये प्रयास कर सके। परमानदजी पार्टी के सबसे ओजस्वी वक्ता माने जाते थ, अतएव वापसी के समय सिगापुर मे आपने एक ऐसी अभूतपूव घटना का सूत्रपात किया, जिसने आपको ब्रिटिश सरकार का दुश्मन न० १ बना दिया। उस समय सिगापुर मे ३ हजार भारतीय सैनिक उपस्थित थे। आपने अपने जिस ओजस्वी भाषण से इनके हृदय मे भारतीय क्राति की ज्वाला धधकायी थी, उसका साराश यह है—

"अँगरेजो ने सन्' ५७ की क्राति के बाद, पटना से दिल्ली के बीच, ग्राड ट्रक रोड पर लगे वृक्षो पर, तुम्हारे पूर्वजो को उलटे लटकाकर, फाँसी देकर क्राति का बदला लिया था। तुम्हारे पूर्वजो पर अमानुषिक अत्याचार करनेवाला वही साम्राज्य आज जर्मनी से युद्ध मे फँसा पडा है। तुम्हारे पूवज स्वर्ग मे आशा लगाए बैठे है कि तुम इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठाकर उन पर किए गए अत्याचारो का बदला लो। सन्' ५७ के युद्ध मे तुम्हारे पूर्वजो ने अपना बलिदान देकर भारत माता को स्वतत्र करने की जो अभिलाषा की थी, वह सपूतो के हृदयो मे दुगुनी - तिगुनी होकर प्रकट होनी चाहिए, और यदि सतानो मे उन वीरता-पूर्ण भावनाओ का अभाव है, तो मै यही कहूँगा, शायद उनके खून मे वह शुद्धता नही रही।"

२० मिनट के इस ऐतिहासिक ओजस्वी भाषण का परिणाम था कि उन भारतीय सैनिको ने कत्ले-आम बोल दिया, और जहा जो अगरेज मैनिक मिला, मार डाला गया। यहाँ तक कि उन्होने आस्ट्रेलियन तथा अन्य विदेशियो को भी नही छोडा, सिर्फ सफेद चमडी-भर देखी। फल-स्वरूप ६०० गोरे सैनिक मारे गए। बाद मे सिगापुर-किले पर उन्होने स्वतत्रता का पहला झडा फहराया। यह क्राति की रक्त-पताका थी, जिस पर भारतवष का नक्शा बना हुआ था। यह झडा भी भारत से ही आया था।

सन् १९१४ मे स्वतत्र्य-प्रिय भारतवासियो क जो प्रसिद्ध जहाज 'कामागाटामारू' कनाडा गया था, और जो विदेशो मे भारतीय क्राति की सबसे सशक्त चिनगारी बना, उस जहाज मे प० परमानद भी याकोहामा से साथ हो लिए थे। इस जहाज के यात्रियो ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह का झडा फहराया था। इसके पूव जब आप जापान मे थे, तो मौलवी बरकनउल्ला ने आपको सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रवृत्त किया। आपने नवयुवक तुर्की सैनिको के साथ ८-१० माह तक सैनिक शिक्षा प्राप्त की, और विश्व-व्यापी रण-नीति को समझा। जब प० परमानद भारत लौटे, तो अपने साथ युद्व के दुर्लभ और गुप्त नक्शे साथ लेते आए, जो जापान-स्थित जर्मन राजदूत ने दिए थे। इन नक्शो को ब्रिटिश सरकार की आँख बचाकर भारत मे ले आना, इन्हे प्राप्त करने से भी अधिक कठिन था। लेकिन कलकत्ता मे जहाज रुकने

पर आपने कुली-वेश बनाया, और कुछ अन्य कुलियो के साथ बाहर निकल गए। उनके हाथ मे एक बालटी थी, और बालटी मे रक्खे बूटो के अदर मोजो मे वे खतरनाक नक्शे थे।

ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध नियोजित प्रयास

यहाँ से वह सीधे लाहौर गए, और क्रातिकारी-शिरोमणि भाई परमानद से भेट करके सारी स्थिति बताई। पुलिस की सरगर्मी के कारण भाईजी ने आपको कपूरथला राज्य के एक सुरक्षित मदिर मे भेज दिया, जहाँ आपने शचीद्रनाथ सान्याल, विष्णु गणेश पिगले, रासबिहारी बोस और करतारसिह के साथ बैठकर भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड फेकने की योजना बनाई। सभवत यह योजना सन् १८५७ की महारानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब पेशवा आदि की व्यापक योजना के बाद दूसरी बडी योजना थी।

भारत के शिखर के क्रातिकारियो की इस मत्रणा मे तय हुआ कि सैनिक दृष्टि से भारत के २१ मम स्थानो पर एक साथ कब्जा कर लिया जाय। ये स्थान थे —अमृतसर, आगरा, जालधर, मेरठ, दिल्ली, गोरखपुर, पटना, जमरोद, पेशावर, रावलपिडी, लाहौर छावनी, क्वेटा, कराची, पूना, जबलपुर, झाँसी, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, मदरास और कलकत्ता। साथ ही १२ महत्त्व-पूर्ण पुल उडाकर, तथा अनेक स्थानो पर तार-टेलीफोन के तार काटकर समस्त भारत की सवाहन-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट कर देने की योजना थी। इसके लिये दो

दजन बम तथा दा हजार तार काटनवाले आजारो की व्यवस्था थी। सबसे महत्त्व-पूण बात तो यह थी कि इनके व्यापक प्रयासो के आधार पर २६ हजार भारतीय सैनिक इनका साथ देने को तत्पर थे।

सारी तैयारी हो चुकी थी। २१ फरवरी, १९१५ की रात्रि मे १२ बजे भारत माता की बेडियाँ काट देने का समय निश्चित था। तभी कृपालसिह-नामक एक कपूत ने २-३ दिन पहले ही सपूण स्वातत्र्य प्रयासो पर पानी फेर दिया। उसने सरकार को सूचना दे दी। क्रातिकारियो को इसकी सूचना मिल गई थी, और उन्होने मुक्ति दिवस दो दिन घटाकर १९ फरवरी ही कर दिया। लेकिन इसकी भी सूचना किसी तरह उस गद्दार युवक को लग गई। परिणाम यह हुआ कि सेनाओ का स्थानातरण होने लगा तथा छावनियो मे विद्यमान लग-भग ५०० क्रातिकारी प्रचारक गिरफ्तार कर लिए गए। इनमे से प्राय ३०० को फाँसी हो गई।

प परमानद भी उन युद्ध-सबधी असाधारण गोपनीय नक्शो के साथ लाहौर मे पकडे गए। जब नक्शे अदालत के सामने पेश किए गए, तो ये प० परमानद को फाँसी की सज़ा दिलाने के लिये काफी थे।

लेकिन क्या आप समझते है कि प० परमानद को फाँसी हो गई? नही। मृत्यु का उपहास करनेवाले के निकट मृत्यु भी नही आती।

वास्तव मे हुआ यह कि प० परमानद के साथ गदर-

पार्टी मे २६ व्यक्तियो को फाँसी की सजा दे दी गई। किंतु तत्कालीन कुछ नेताओ ने वाइसराय लार्ड हार्डिंज से भेंट की, और उन्हे पहले तो क्रातिकारियो का यह तक बताया कि उन्होने जो कुछ किया, आत्मरक्षा अथवा देश-रक्षा के लिये किया, जो अपराध नही है, साथ ही यह भी समझाया कि यदि इतने लोगो को फाँसी दे दी गई, तो देश मे जबरदस्त विद्रोह और असतोष फैलेगा—विशेषकर सेना मे, क्योकि अधिकाश क्राति-कारी सेना मे प्रचार करते हुए ही पकडे गए थे। ऐसी दशा मे देश की शाति और व्यवस्था के हित मे गदर-पार्टी के नेताओ के केस पर पुर्नविचार किया जाय।

वाइसराय की समझ मे बात कुछ आई, और उन्होने सारे मामले को प्रिवी कौंसिल मे भेज दिया। उसने अपने निणय मे केवल ७ व्यक्तियो की फाँसी की सजा बरकरार रक्खी, शेष १९ की फाँसी की सजा को काले पानी मे बदल दिया। प० परमानद इन्ही १९ लोगो मे से एक थे।

इसके बाद प० परमानद भाई परमानद आदि के साथ अडमान भेज दिए गए। उस समय वीर सावरकर, वारींद्र-कुमार घोष (अरविद घोष के भाई) आदि देश के अन्य शीर्षस्थ क्रातिकारी भी वहाँ उपस्थित थे।

सामाजिक पुनर्जागरण का व्रत

ऐसे क्रातिकारी-शिरोमणि प० परमानद सौभाग्य से आज भी हमारे बीच विद्यमान है, किंतु दुर्भाग्य से उनके महान्

कृतित्व से बहुत कम लोग परिचित हे। वह परिव्राजक की भाँनि आज भी देश-भर मे भ्रमण किया करते है। एक बार उनसे देश के स्वातत्र्य सघष की चर्चा चली, तो उन्होने बताया कि गदर - पार्टी ओर महात्मा गाधी ने देश की समस्या का मनोवैज्ञानिक निदान किया था। पहले ने मृत्यु को हँसी-खेल बना दिया था और दूसरे ने जेल को। सामान्य व्यक्ति इन्ही दोनो से डरता है।

पडिनजी कई बार कह चुके है—"वस्तुत पूरे राष्ट्रीय जीवन मे राजनीनि का स्थान सिफ दो आने-भर है, लेकिन आज वह सारे जीवन पर छाई है। उसने जन जीवन का नैतिक अध पतन कर दिया है। इसके निराकरण के लिये धम का अधिष्ठान आवश्यक हे।" आपका इरादा पूरे देश मे, गाँव-गाँव मे, पद-यात्रा द्वारा सामाजिक पुनर्जागरण करने का ह। आपकी कमशीलता का प्रवाह आज भी बना हुआ है।



दुर्गादेवी बोहरा

लखनऊ मे ही उस दिन जब मै अत्यत महत्त्व-पूण क्राति-कारिणी श्रीमती दुर्गादेवीजी से मिलने के लिये चला, तो मुझे स्वय अपने ऊपर यह आश्चर्य हुआ कि मै क्रातिकारियो से मिलने के लिये कितने ही सुदूर क्षेत्रो मे जाया करता हू, पर अपने नगर मे ही विद्यमान इतिहास-प्रसिद्ध क्रातिकारिणी दुर्गादेवीजी से अभी तक कभी न मिला—जब कि दुर्गादेवीजी कोई सामान्य क्रातिकारिणी न थी। यह अपने सुप्रसिद्ध क्राति-कारी पति (स्व०) भगवतीचरण बोहरा की क्रातिकारिणी पत्नी थी, और यहाँ तक कि साडस-हत्याकाड के बाद जबर-

दम्न पुलिस-पहरे के बावजूद आप सरदार भगतसिह और ाजगुरु को लाहौर के बाहर निकाल लाई । दुर्गादेवीजी-जैसी जबरदस्त क्रातिकारिणी महिला से अब तक न मिलने का एक ज़बरदस्त मनोवैज्ञानिक कारण यही हो सकता हे कि वह अपने विगत क्रातिकारी जीवन को प्रयत्न-पूवक भुला चुकी ह, उसकी किसी प्रकार चर्चा करना भी पसद नही करती । वह कहती हे कि उस जीवन पर मैने लौह आवरण-जैसा डाल रक्खा है, उसको आज स्मरण करने से कोई लाभ नही । यही कारण है कि स्थानीय जनता—यहा तक कि उनके अनेक निकट-तम लोग भी नही जानते कि यह शात और गभीर महिला कभी बम और बदूको के धडाको के बीच रहती थी, जिनसे सुदृढ ब्रिटिश सत्ता भी हिल उठी थी । इस खामोशी का ही परिणाम है कि 'सरदार भगतसिह'-नामक एक फिल्म मे आपकी मृत्यु दिखाई गई है ।

खैर, 'देर आयद, दुरुस्त आयद' वाक्य का स्मरण कर कुछ सतोष मिला मन को, और मै दुर्गा भाभी (पार्टी के लोगो का सबोधन था) के यहाँ पहुँच गया । दुर्गा भाभी के पास पहुँचना अपने आपमे कोई सफलता न थी । वह तो मानो बहुत दूर खड़ी थी—व्यग्य-पूर्वक मुस्किराती हुई, क्योकि दुर्गादेवी प्राय तीन दशक से अपने विगत क्रातिकारी जीवन की चर्चा और विज्ञापन से दूर रही है । फिर यह लौह आवरण हटाऊँ कैसे जिसे हटाना ही मेरी उनके घर तक की यात्रा का उद्दृश्य था । काम जरा कठिन अवश्य था ।

१५ दिसबर, १९२८ ! लाला लाजपतराय पर घातक प्रहार करनेवाले पुलिस - अधिकारी साडर्स की सनसनी-खेज हत्या का दिन ! रात्रि को ११ बजे लाहौर की एक गली के मकान की कुडी धीरे से खटकती है। दरवाजा खुलता है, और एक व्यक्ति अदर आता है।

"अच्छा, सुखदेव ! आओ, बैठो ।"

"क्या हो रहा है, दुर्गा भाभी ?"

"कुछ नही, जरा सस्कृत का अभ्यास कर रही थी।"

"तो यही करती रहोगी या और कुछ भी ? कुछ फिकर है आपको ?"

"तो बताओ न, क्या करूँ ? जो कहोगे, करूँगी ।"

"कुछ रुपया है पास मे ?"

"हाँ है। भगवतीचरणजी एक हजार रुपए रख गए है मेरे पास।"

"अच्छा, ठीक है। कही बाहर जाना पडे, तो जा सकोगी ?"

"हाँ, कब जाना है ? स्कूल से छुट्टियाँ ले लूँगी।"

"यदि इसी समय जाना पडे, तो ?"

"मै तैयार हूँ ।"

"ठीक है।"

सुखदेव चले गए। दो घटे बाद फिर कुडी खटकी। इस बार एक और युवक का प्रवेश। बिल्कुल अँगरेज-जैसा। लबा

चेस्टर, बडे-बडे कालरो से आधा चेहरा ढका हुआ । सिर पर वढिया फेल्ट हैट ।

'दुर्गा भाभी, पहचाना इन्हे ?"

"नही तो।" जरा झिझकते और लजाते हुए उन्होने कहा ।

'तब तो हम सफल हो गए ।" तभी एक जोरो का ठहाका !

"अरे, यह तो भगत है !"

"नो-नो, दुर्गा भाभी ! नाऊ रिमेबर ही इज योर हज-बैंड ऐ ड यू आर हिज़ वाइफ ।" फिर एक सामूहिक हॅसी ।

तभी एक मैले कुचैले आदमी का प्रवेश । कपडे भी फटे-पुराने ।

"अरे, राजगुरु ? आज तो तू अपनी असली हुलिया मे है ।"

"नही, मै राजगुरु नही । मै तो नौकर हूँ । गरीब-परवर ।" फिर एक धीमी, किंतु सामूहिक हॅसी ।

लाहौर-स्टेशन पुलिसवालो और जासूसो से भरा पडा है । देखते है, कोई क्रातिकारी कैसे लाहौर से बाहर जाने पाता है । और तभी प्लेटफार्म से एक अँगरेजनुमा जोडा पजाब मेल के फर्स्ट क्लास की ओर बढता है । पीछे-पीछे एक भारतीय नौकर भी । साहब की गोद मे तीन साल का गोरा-चिट्टा बालक है । जोडे का रुआब सब पर पडता है—यहाँ तक कि कुछ पुलिसवाले सैल्यूट भी झाड रहे है ।

'व्हाट इज दि मैटर, डार्लि ग ?"

"नथिग डियर ! यू नो, डी० वाई० एस्० पी० साडर्स हैज बीन किल्ड यस्टरडे ।"

"आई सी ।"

वे ट्रेन मे बैठ जाते है । ट्रेन चल देती है ।

हावडा का प्लेटफार्म । भगवतीचरण बोहरा और सुशीला दीदी ट्रेन की प्रतीक्षा मे खडे है । ट्रेन आती है, वही जाडा उतरता है तीन वष के बच्चे को साथ लिए हुए ।

"ओह दुर्गा ! प्रिये, आज मेरा और तुम्हारा असली ब्याह हुआ है । अब हमारा मार्ग बिल्कुल एक हो गया है । शाबाश, मै नही जानता था, तुम इतनी कुशल हो " और न जाने क्या-क्या भगवतीचरणजी कहते चले जा रहे है पत्नी की पीठ पर हाथ फेरते हुए ।

भगतसिह को छुडाने का प्रयास

" आजाद भइया ! इतनी रात गए ?"

"और नही तो क्या, दिन मे घूमकर अपने को पकडवा दू, भाभी ?"

"अच्छा, तो बताइए, मेरे लिये क्या आदेश है ?"

"आदेश-वादेश कुछ नही । भगतसिह, राजगुरु वगैरह लाहौर जेल मे बद है न, बस, उन्ही को छुडाना है । तुम पहले उनसे जेल मे भेष बदलकर मिल आओ, और मौका देखकर विचार-विमर्श कर लो । फिर एक दिन जब वे एक जेल से दूसरी जेल मे जा रहे हो, पुलिसवालो पर

आक्रमण कर उन्हे छुडा लिया जाय। जानती हो, एक जेल मे दूसरी जेल मे जाने की व्यवस्था वे कैसे करे ? उन्हे जेल मे अनशन करना चाहिए और अनशन तुडाने का प्रयास करने-वाले अधिकारियो से उन्हे कहना चाहिए कि जब तक वे दूसरी जेल मे बद अपने साथियो से विचार न कर लेगे, अन-शन नही तोडेगे।"

'भइया, मै तो भगतसिह से कल ही मिलकर आई हूँ। उनकी फाँसी की कोठरी तक गई थी, और उन्होने खोए की बनी हुई कोई मीठी चीज भी मुझे खिलाई थी। जानते हो दादा, मै किस रूप मे गई थी ? उनकी चाची बनकर। सलवार पहनकर और दुपट्टे से थोडा-सा घूँघट काढकर। इसके पहले भी कई बार मिल चुकी हूँ। सभी चिट्ठी वगैरह भी पहुँचा दी थी। कल जाकर बाकी बाते भी कर लूगी।"

"शाबाश, अच्छा, मै चला। देखो, आवश्यक बम वगैरह बिल्कुल तैयार रहने चाहिए। वैसे मै घटना-स्थल पर मौजूद रहूँगा। शाम को अपना काम होगा, ज़रा मुँह अँधेरे, जब भगतसिह दूसरी जेल मे अपने साथियो से मिलकर लौट रहा होगा। बाहर ३-४ आदमी ताश खेलते रहे और एक आदमी बाँसुरी हाथ मे लिए घूमता रहे। जब बाँसुरी बजे, तभी पुलिस पर आक्रमण कर दिया जाय, और दूसरी कार मे बैठा-कर उन्हे भगा लाया जाय।"

"ठीक है भइया, सब व्यवस्था हो जायगी। जेल के पास

एक बँगला भी ले लिया गया है। हालाँकि उसके ऊपरी हिस्से मे एक मदरासी इजीनियर रहते है। लेकिन उससे अपना क्या नुकसान।"

"अच्छा, ठीक है भाभी। अब जाता हूँ।"

पति शहीद

लाहौर मे एक घर की कोठरी। दुर्गा भाभी तथा कुछ अन्य क्रातिकारी बैठे है। सुखदेव राज बोला—"भाई, आज पुलिस पर हमला करके अपने प्रिय साथी को छुडाना है, लेकिन इन बमो की जाँच भी कर ली है? कही ये मौके पर टॉय-टॉय फिस हो गए, तो हम सब साफ पकड लिए जायँगे।"

"हाँ, बात तो ठीक है।" भगवतीचरण बोहरा बोले—"आप लोग सब तैयारी रखिएगा। मै अभी जाकर रावी के किनारे इनकी जाँच करता हूँ। सुखदेव राज और वैशपायन, तुम दोनो मेरे साथ चलना चाहोगे?"

"हाँ दादा, हम चलेगे।"

रावी के किनारे निर्जन स्थान। सिर्फ तीन दीवाने कुछ कर रहे है।

"भाई सुखदेव, इस बम की कैप कुछ ढीली है।"

"तुम तो बोहरा दादा, बडे डरपोक हो। लाओ, मै ।"

और, तभी एक जोरो का धमाका होता है, सारी दिशाएँ काँप उठती है। भगवतीचरण घायल हो जाते है, सुखदेवराज के पैरो मे भी सख्त चोट आती है।

"बधुओ, अब मेरी चिता मत करो। वह ऐक्शन अपने वक्त पर होना चाहिए। अब शायद मै बचूँ भी नही।" भगवनीचरण ने बहादुरी के साथ, किंतु कराहते हुए कहा।

'नही दादा, ऐसा न कहो। तुम्हारी जिदगी पार्टी के लिये बहुत कीमती है। मै अभी जाकर तुम्हारी चिकित्सा का प्रबध करता हूँ,' यह कहकर सुखदेव राज चल देता है। साय चार बजे पहुँचकर वह अन्य बधुओ को दुर्घटना की सूचना देता है। यशपाल घटना-स्थल पर आते है।

फिर क्या होता है, भगवतीचरण तत्काल चिकित्सा के अभाव मे कब और कैसे दम तोड देते है, ये सब तथ्य रहस्य के गर्भ मे पड जाते है। बहरहाल उस वीर क्रातिकारी को सैनिक सलामी देकर रावी मे ही प्रवाहित कर दिया जाता है।

लेकिन दुर्गादेवी का क्या होता है? ओह, जीवन-सवस्व छिन जाने के बाद दो आसू बहाने की भी फुसत नही। अभी तो देश गुलाम है—बडे-बडे काम करने को पडे है। रो तो फिर लेगे, आखिर उतनी बडी जिदगी जो पडी है, लेकिन अभी उस दुख के बारे मे सोचने का भी अवकाश कहाँ! आज भगतसिह को छुडाने का काम टल गया है, उसे पूरा करना है कल।

और, तभी कुछ समय बाद एक जबरदस्त धडाका—पूरा घर कॉप गया हो जैसे।

आजाद दोडकर आते हे, "क्या हुआ भाभी? अरे बम फट गया। कोई घायल तो नही हुआ? कोई नही न?"

इस दुर्घटना ने सब करे-कराए पर पानी फेर दिया। शायद विधाता को यही मजूर था या देश को भगतसिह, राजगुरु-जैसे शहीदो के खून की जरूरत थी। भगतसिह छुडाए न जा सके, और अतत वह फासी पर चढाए गए।

भगतसिह की फॉसी के बाद देश मे जो परिस्थितिया बनी, उनके विरुद्ध पुन क्राति का बढाना आवश्यक समझकर विभिन्न क्रानिकारी विभिन्न स्थानो को भेजे जाते है। दुर्गादेवी भी आती है बबई मे लाड हेली को खत्म करने, लेकिन जैसे ही कार से उसके बॅगले पर आती है, पुलिस की कडी व्यवस्था दिखाई पडती है—शायद पुलिस को इसका आभास मिल गया हो। लो, यह भी तीर खाली जाता है। कार आगे बढ जाती है। तभी आगे एक सिनेमा-घर के पास पहुँचने पर नायक पृथ्वीसिह आज़ाद शूट करने का आदेश देते है, और दुर्गादेवी की पिस्तौल दो अँगरेजो पर चल जाती हे। सार्जेट टेलर सख्त घायल होता है। 'पकडो - पकडो' की आवाज। लेकिन पकड कौन सकता है! कोई कच्ची गोलियाँ थोडे ही खेली है!

अतत दुर्गादेवी अपने बालक को लेकर बबई से कानपुर आ जाती है। आजाद को सपूण गाथा विदित होती है। आजाद उन्हे सात्वना देते हे, और धैर्य धारण कर अपना कार्य करने की सलाह देते है, लेकिन शायद भगवान् को यह भी मजूर नही। पति का स्वगवास हो ही गया था, भगतसिह-जैसा सहयोगी चला गया, और अब आजाद-जैसे परम सहयोगी तथा प्रेरक भी चले गए। नेता के चले जाने के बाद जिस प्रकार सेना मे

कुछ छिन्न-विच्छिन्नता और निराशा आ जाती है, उसी निराशा की शिकार दुर्भाग्य से दुर्गादेवीजी भी बनी। और, उन्होने लाहोर जाकर आत्मसमर्पण कर दिया।

कोई विशेष प्रमाण मिल न सके। लगभग ३ वर्ष जेल मे अवश्य रही। छूटने पर काग्रेस की ओर उन्मुख होकर १९३८ मे दिल्ली-प्रदेश-काग्रेस की अध्यक्षा भी बनी, किंतु शीघ्र ही राज नीति की ओर से विमुख और जीवन मे अपनाए गए दूसरे पथ पर दृढता, एकाग्रता और रुचि-पूवक अग्रसर हो गई। मदरास मे माटेसरी की ट्रेनिग प्राप्त कर १९४० मे लखनऊ मे माटेसरी स्कूल प्रारभ किया। उस समय मे आज तक उसी काय मे सलग्न है, और पर्याप्त रूप मे सफलता की प्राप्ति हुई है।

बस, यही है ५७ वर्षीय दुर्गा भाभी के क्रातिकारी जीवन की एक झलक। उन्हे अपने वर्तमान से इतना जबरदस्त प्रेम है कि न अपने अतीत का भली प्रकार स्मरण है, और न भविष्य की चिता ही।

❀

९

श्रीमती शास्त्रीदेवी

अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' की बहन श्रीमती शास्त्री-देवी की कहानी अपने भाई के ही कमठ, समथ और बलिदानी जीवन की कहानी का एक प्रेरक और साथ-ही-साथ करुणा-जनक अध्याय है। शास्त्रीदेवीजी क्रातिकारी दल की विधिवत् मदस्या कभी नही रही, किंतु उन्होने अपने महान् क्रातिकारी भाई को दल के उद्देश्यो की प्राप्ति मे जो सहयोग दिया, वह असाधारण महत्त्व-पूण है। इसीलिये बहन शास्त्रीदेवी को पृथक् करके क्रातिकारी बिस्मिल के कार्यो का मूल्याकन अपूण होगा।

जब शास्त्रीदेवी कम आयु की थी तभी से बिस्मिल ने उन्हे अपने काम मे उपयोगी बनाने का प्रयास शुरू किया था। वह चुपके से शस्त्रास्त्र लाते और घर मे बने हुए एक गुप्त गड्ढे मे रखते थे। इसकी सारी सूचना शास्त्रीदेवी को रहती थी, लेकिन बिस्मिल ने उनसे साफ कह दिया था कि यदि यह रहस्य कभी किसी से बताया, तो गोली से उडा दूगा। केवल भय की ही बात न थी, बिस्मिल उन्हे याद भी बहुत करते थे। इसीलिये शास्त्रीदेवी अपने प्रिय भाई के महान् काय मे हाथ बॅटाना अपना परम कतव्य मानती थी।

नवविवाहिता दुलहन और तेज छुरा

एक बार बिस्मिल शास्त्रीदेवी के पैरो मे बॅधी तथा लहॅगे से ढकी हुई बदूके ला रहे थे। स्वाभाविक था कि बहन के पैर बहुत दद करने लगे थे, क्योकि वह किसी प्रकार बैठ नही सकती थी। इसी दशा मे वह बरेली-स्टेशन पर उतरी। सयोग से वहाॅ का स्टेशन-मास्टर बिस्मिल का परिचित था। वह दोनो से घर चलने का आग्रह करने लगा। शास्त्रीदेवी का आधा शरीर दद के मारे टूटा जा रहा था, अतएव उन्होने बहुत आना-कानी की, लेकिन जब वह न माना तो इस आशका मे कि कही उसे कोई सदेह न हो जाय, दोनो को उसके घर जाना पडा। शास्त्रीदेवी का हाल बडा बुरा था। उनका कष्ट जब असहनीय होने लगा, तो वह पेट के दर्द का बहाना लेकर वहाॅ से चल पडी। तब बिस्मिल को भी

उनके साथ चलना पडा। बाद मे उन्होने अपनी बहन की सूझ-बूझ पर बडी प्रसन्नता व्यक्त की।

बिस्मिल ने पार्टी के लिये रुपया जुटाने के उद्देश्य से पलिया मे जो डकैती डाली थी, उसमे शास्त्रीदेवी का बडा हाथ था। यह बडे नाटकीय ढग से आयोजित की गई थी। शास्त्रीदेवी को नवविवाहिता दुलहन बनाया गया और उन्हे बिदा कराकर ले चलने का रूपक बाँधा गया था। दुलहन एक हाथ का घूघट, काढे पैरो मे महावर और हाथो मे मेहँदी लगाए बैल-गाडी मे बैठी थी। सूप आदि भी रक्खा था। जब डकैती डाल ली गई, तो उसका सामान इसी बैल-गाडी मे रखकर शास्त्रीदेवी उस पर बैठ गई। उनको एक बडा चाकू दे दिया गया था कि यदि कोई बोले, तो उसे भोक दिया जाय।

एक बार अचानक जब पुलिस बिस्मिल के घर आ गई थी, तो शास्त्रीदेवी ने दौडकर दरवाजे की कुडी बद कर ली और भाई के निर्देशानुसार घर मे विद्यमान सभी कागजात जला दिए। तब तक बिस्मिल घर के कोठे से किसी तरफ उतरकर भाग खडे हुए। बाद मे शास्त्रीदेवी ने पुलिसवालो से निपट लिया, तथा अनेक तरह से परेशान करने पर भी इन्होने पुलिस को कुछ न बताया।

शास्त्रीदेवी ने इतना सब उस स्थिति मे किया, जब प्रारभ से ही वह अत्यत अभाव और दुर्भाग्य-पूण परिस्थितियो मे थी। बिस्मिल अपनी इस बहन को पढा-लिखाकर किसी अच्छे

घर मे उसकी शादी करना चाहते थे । एक बार जब वह लबे अरसे के लिये फरार हुए, तो माता-पिता ने उन्हे मृत समझ-कर शास्त्रीदेवी का विवाह एक अत्यत विपन्न परिवार मे कर दिया, जिसके बाद बिस्मिल अपनी प्रिय बहन के दुर्भाग्य पर बहुत रोए थे । इनके पति दिल्ली के एक प्याऊ पर नौकर थे। उन्हे गभीर रूप से सग्रहणी हो गई थी । जब पति मरने लगे, तो उन्होने इनसे पूछा कि मेरे मरने के बाद क्या करोगी ? इन्होने दृढता-पूवक कहा था कि जो भगवान् कराएँगे, वही करूँगी । इस पर मरते हुए पति ने कहा था कि नन्हा-सा पुत्र ही मेरी निशानी है, इसको पालना ।

दुर्भाग्य तो देखिए कि पति के मरने से एक माह पूव पिता भी मर चुके थे । इस प्रकार सभी सहारे छूट गए थे । उस पर से अपनी विधवा माता का भी भार आ गया था । उन्होने माता को आश्वासन दिया था कि मै मेहनत-मजदूरी करके तुम्हारा पेट पालूगी ।

शास्त्रीदेवी के साथ सबसे अधिक निर्दयता तो उनके ससुरालवालो ने की, जिन्होने पति की मृत्यु के बाद उन्हे मारकर घर से निकाल दिया । साथ ही अन्य प्रकार से भी उनका अपमान किया, तथा पति की सपत्ति मे से कोई हिस्सा उन्हे न दिया । कई वर्षो बाद शास्त्रीदेवी पुन पति-गृह को लौट सकी थी ।

इसके बाद विधवा शास्त्रीदेवी अपनी अशक्त विधवा मा के साथ रहने लगी । इस अवधि मे शहीद बिस्मिल की

इस बहन और मा ने जो कष्ट उठाए है, उन्हे जानकर कोई कठोर हृदय भी रो पडेगा । उन्होने एक बार लिखा था—"मैने ई ट-लकडी लगाकर एक तिचारा तथा उसके ऊपर एक अटारी बनवाई । ऊपर माताजी ने गुजर की, नीचे आठ रुपए मे किराए पर उठा दिया । आठ रुपए मे मै, माताजी तथा बच्चा रहते थे बहुत ही मुसीबत से । एक समय कभी-कभी खाना प्राप्त होता था । मैने एक डॉक्टर के यहाँ ६ रुपए मासिक पर खाना बनाने का काम कर लिया, परतु कपडे की कमी से बहुत ही दुखी थे। बच्चा सयाना हुआ । माताजी न सबसे फरियाद की कि कोई इस बच्चे को पढा दो, कुछ कमा खाएगा, मगर शाहजहापुर मे किसी भी दाता ने ध्यान न दिया। मैने किसी प्रकार पाँचवाँ दर्जा पढा दिया, उसके बाद मजबूरी थी । कोसमा मे ३ बीघा खेत था, उसे भी कर्जे मे रक्खा । मेरा दुख माताजी को बहुत सताता था । विष्णु शर्मा-नामक एक क्रातिकारी जब चौदह साल की जेल काटकर लौटे, तो माताजी के दशनार्थ आए । माताजी जाडे के मारे ठिठुर रही थी । उनका दुख देखकर वह चकित रह गए और पूछा—"आपको किसी भाई ने मदद नही की ?" माताजी बोली—"मदद देनेवाला तो परमात्मा है ।" उनकी ऑखो से ऑसुओ की धारा बह चली । फिर बोली—"मेरी पुकार ईश्वर भी नही सुनते, जो इस शरीर से छुटकारा द ।" विष्णु शर्मा ने उन्हे अपना कबल उढा दिया । स्वराज्य होने पर माताजी को ६० रु० की पेशन मिलने लगी । माताजी के साथ मेरी

भी गुजर हो जाती थी। माताजी के स्वर्गवास के बाद तो मुझ पर आफत का पहाड ही टूट पडा। मैने मैनपुरी के नेता लोगो से भी फरियाद की कि आप लोग मेरे लडके को पढा दे, तो इसका जीवन सँभल जाय, लेकिन अपने सुख के सामने गरीबो की कौन सुनता है ! आज मै दीन-दुखिया हूँ, लेकिन अगर मेरे भाई रामप्रसाद जिंदा होते, तो वह अपने भानजे को कितना पढाते और मेरी सहायता करते ? स्वराज्य मे आज मै हर तरह से मुसीबत उठा रही हूँ। मै बहुत दुखी थी, और फाके कर रही थी। मेरा लडका कुसग मे फँसकर घर से निकल गया था। एक महीने तक पता न चला। मै और मेरी बहू, दोनो अपने दुख मे सलाह कर रहे थे कि चलो दोनो गगा मे डूब जायँ, कहा तक भूखो मरे। एक दिन तो नही है, जो काट ले।"

तभी बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक व्यक्ति को भेजकर शास्त्रीदेवीजी की स्थिति का पता लगवाया, और बाद मे सहायता की एक अपील निकाली। फल-स्वरूप शास्त्रीदेवी और उनके परिवार को कुछ समय तक के लिये खाने-पीने की सतोष-जनक व्यवस्था हो गई।

अगस्त, १९६२ की बात है, मैने बहन को लखनऊ बुलाया था, और तब मैने उनके सस्मरण जी भरकर सुने। अपने अनेक सस्मरण सुनाते हुए वह खूब रोई, और मुझे भी रुलाया था। मुझे ऐसा लगा कि उनके मन मे एक बडी कसक है, और वह इस बात की कि वह अपने शहीद भाई के

दर्शन फाँसी से पूव न कर पाई थी । बिस्मिल ने उन्हे फाँसी से पूर्व जेल मे मिलने के लिये सिफ इसलिये न बुलाया था कि आने-जाने के लिये बेचारी के पास रुपए कहाँ से आएँगे, इसके लिये कही उसे घर के बर्तन आदि न बेचने पडे । उनकी मा शहीद होने से पूर्व अपने बेटे से मिलने गोरखपुर जेल मे अवश्य गई थी । उस समय भाई ने अपनी बहन के लिये एक लबी चिट्ठी मा को दी थी, जो मा से पता नही, कहा खो गई । इसका भी बहन को बडा दु ख रहा ।

यह दर्दनाक गाथा

'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते है ।' की उदात्त भावना और देशवासियो की कल्याण-कामना लेकर बिस्मिल फाँसी पर चढ गए, देश के लिये शहीद हो गए, लेकिन यह निर्दय विडबना देखिए कि उसी शहीद के परिवार के लिये दोनो समय पेट-भर भोजन और तन ढकने के लिये मोटे कपडे तक की समस्या हो गई, तथा रोग-ग्रस्त एकमेव भाई ने दवा के अभाव मे दम तोड दिया । बिस्मिल की एक बहन ने तो अपने भाई की फाँसी की सजा के समाचार से सखिया खाकर प्राण दे दिए । स्वय शास्त्रीदेवी ने रोते-रोते अपनी दाई आँख खा दी, और एकमेव शेष भाई ने अस्पताल की शरण ली । डॉक्टर न जब शहीद के पिता से इलाज के लिये २०० रुपए माँगे, तो शहीद के उस अभागे जन्मदाता ने अपने हृदय की वेदना को दबाते तथा नेत्रो की अश्रु-धारा के आवेग को रोकते हु

आद्र कठ से कहा था—"डॉक्टर ! यदि मुझ अभागे के पास इतने रुपए होते, तो मै यहॉ आता ही क्यो ? कचहरी का एक मामूली स्टाप-विक्रेता ही तो हूँ, कहॉ से लाऊँ इतने रुपए ?" इस प्रकार उस अभागे पिता का जो शेष पुत्र, अपने अग्रज के ही चरण-चिह्नो पर चलकर स्वतत्रता की बलि-वेदी पर बलिदान होना चाहता था, अपने जीवन के अभावो और मज-बूरियो की बलि-वेदी पर बलिदान हो गया। ओह ! इससे भी बडी मजबूरी कोई हो सकती है ?

शास्त्रीदेवी तो इससे भी अधिक कुछ कहती है। उनका कहना है कि मेरे इस भाई को ब्रिटिश सरकार ने जान-बूझ-कर मरवा डाला, क्योकि यह भी बिस्मिल की तरह जोशीला और वीर था। बिस्मिल ने फॉसी से पूर्व जेल मे अपनी जो आत्मकथा लिखी थी, उसे सत्याथ-प्रकाश मे गुप्त रूप से रखकर इसी भाई को भेट देने के बहाने जेल से बाहर भेजा था।

जिन दिनो बहन शास्त्रीदेवी मेरे यहॉ ठहरी थी, मैने एक बार उनसे कहा था—"बहनजी, आप यहॉ जब तक है, खूब ठाट से खाइए, पीजिए। जो चीजे आपको पसद हो, वे बतलाइए, बनवा दू या बाजार से मॅगवा दूँ।" इस पर उन्होने बडे दयनीय भाव से उत्तर दिया—"भैया, हफ्तो भूखे रहते-रहते अब इस पेट की भूख ही मर गई है। हजम करने की शक्ति ही खत्म हो गई। मुझे कुछ रूखा-सूखा नसीब हो जाय, वही बहुत है। अच्छी चीजे मेरे भाग्य मे कहॉ !"

ऐसी ही विपरीत सामाजिक परिस्थितियो और गभीर

अभाव की स्थिति मे बहन शास्त्रीदेवी मैनपुरी-जिले (उ० प्र०) के कोसमा ग्राम (डाकखाना भी यही) मे येन-केन-प्रकारेण जीवन व्यतीत कर रही है; अपने हृदय मे भाई बिस्मिल की शहादत और अपने विगत कर्मशील जीवन की स्मृतियो को सँजोए हुए ।

१०

लाला हनुमनसहाय

बगाल को दो परस्पर विरोधी, किंतु अत्यत महत्त्व-पूण श्रेय प्राप्त है। प्रथम अँगरेजो का भारत मे स्वागत करने का, और द्वितीय उन्हे भारत से खदेडने की भूमिका बनाने का। यह भूमिका उस समय बनी, जब १९०५ मे सपूण बगवासी बगाल को विभाजित करने की वाइसराय कर्जन की नासमझी के विरुद्ध विद्रोह कर उठे थे, और उन्होने स्वदेशी-आदोलन के साथ-साथ पूर्ण स्वराज्य की माँग भी कर दी थी। बगाल की जिस बात ने अँगरेजो को सबसे अधिक आतकित किया, वह थी वहा की सशस्त्र क्राति। इस क्राति और जागरण ने ही

अँगरेजो को मजबूर किया कि बगाल-विभाजन को रद्द कर द, आर अतत १९११ मे भारत आगमन पर प्रिस ऑफ् वेल्स ने बग-भग-योजना रद्द कर दी। इतना ही नही, अँगरेज बगाल से इतना डर गए थे कि उन्होने भारत की राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली मे कर दी।

अँगरेजो ने शायद यह सोचा था कि दिल्ली मे वे पिस्तौल की गोलियो आर बम के धडाको से बचे रहेगे, क्योकि सन् ५७ की क्राति के समय उन्होने अपनी समझ मे दिल्ली को बरबाद कर दिया था, और अब वे समझते थे कि दिल्ली पूणतया शात होगी।

लेकिन सिर मुडाते ही। ओले पडे। दिल्ली आते ही, सन् १९१२ ई० मे, वाइसराय लॉड हार्डिज पर बम फेका गया। अँगरेजो का लगा—अरे! दिल्ली तो उतनी ही खतरनाक है। किस्मत थी हार्डिज की कि वह बच गया! लेकिन यह बम बेकार नही गया। उसके तेज धडाके ने सपूण देश को जगा दिया। जब इस सिलसिले मे मास्टर अमीरचद, अवधविहारी, बालमुकुद और बसतकुमार विश्वास को फॉसी हुई, तब तो देशवासियो मे अँगरेजो और उनकी सत्ता के विरुद्ध रोष एव आक्रोश व्यापक रूप से उत्पन्न हो गया।

इसी हार्डिज-बम-केस के एक क्रातिकारी है लाला हनुमत सहाय, जो जीवित बच रहे थे, और सौभाग्य से आज भी, ८१ वर्ष की आयु मे, जीवित है। लालाजी की उग्र राष्ट्रीयता मानो उन्हे विरासत मे प्राप्त हुई थी। सन् ५७ की क्राति के बाद

बह निकली थी। और, उस पर से अँगरेज सुपरिटेडेट ने दभ-पूवक कहा था—"अगर टुम दिल्ली का बदमाश हे, टो हम लडन का।" और उन्हे ऐसी कालकोठरी मे बद कर दिया गया, जहाँ उन्हे एक माह तक सूयदेव के दशन तक न हो पाए। वजन १३२ पौड से घटकर ८० पौड रह गया, तथा देह सूज गई थी। इस पर भी दो पैरो के बीच डडा-बेडियाँ डाल दी गई थी। उसी समय हनुमतसहायजी को पेचिश हुई, जिसने एक दूसरे गभीर रोग का रूप धारण कर लिया। उससे आज तक उनका पीछा नही छूटा है।

अँगरेज जेल-अधिकारियो ने अत्यत कायरता-पूवक धीरे-धीरे जहर भी दिया। लालाजी को इस बात का पता था कि कुछ लोगो को इस प्रकार जहर दिया गया है, क्योकि एक बार उन्होने छिपकर जेल के आई० जी० की बात सुन ली थी, जिसमे उसने डॉक्टर से पूछा था कि अमुक कैदी अभी तक मरा क्यो नही! इसके अतिरिक्त एक तो उनके सामने ही मर गया था। जिसे एक दिन कोई जहरीली दवा दी गई, दूसरे दिन बहुत तेज बुखार आया, और तीसरे दिन वह मर गया।

हनुमतसहायजी पर भी ऐसी ही एक जहरीली दवा का प्रभाव पडा था, किंतु डॉक्टर की किंचित् कृपा से वह बच गए। यह डॉक्टर पिटाई होने के दिन से ही लालाजी के साथ था, जिसके फल-स्वरूप उसमे इनके प्रति कुछ सपक-जन्य सहानुभूति हो गई थी। वैसे इतना अवश्य प्रभाव पडा था कि दवा

प्रेरक पुरुष से मिले। लाला हरदयालजी के साथ भी आपने वहुत काम किया।

मेरे लिये यह एक सौभाग्य-पूण सयोग ही था कि गत वर्ष दिल्ली मे मुझे लाला हनुमतसहाय-जैसे पुराने क्रातिकारी वीर के दर्शन हुए। मैने उनके क्रातिकारी जीवन के सस्मरण सुने तथा उनके वर्तमान विचारो से अवगत हुआ। जब मै उनके घर पहुँचा, तो वह भोजन बना-खाकर विश्राम कर रहे थे। मुझे यह जानकर आश्चय हुआ कि ८० वष की अवस्था मे भी वह भोजन अपने हाथ से ही बनाते है। मुझे यह भी उनके सतत कर्म-रत जीवन का एक दृष्टात ही लगा। साथ ही विगत तीस वर्षो से वह लाला हरदयाल पर एक पुस्तक भी लिख रहे है, जो मेरे विचार से उस अद्भुत क्रान्तिकारी नेता पर प्रथम प्रामाणिक एव परिपूर्ण पुस्तक होगी। इसके लिये वह विगत कई वर्षो से लाला हरदयाल के अमेरिका, इँगलैंड, जर्मनी आदि के प्रवास-काल के तथ्य एकत्र करने मे सलग्न है, तथा उनका इन देशो से पत्र-व्यवहार जारी है। मैने उनसे जब पूछा कि यह पुस्तक कब तक तैयार हो जायगी, तो उन्होने कहा, अभी मै कुछ कह नही सकता।

विगत गौरवशाली क्रातिकारी जीवन की तरह उनके वर्तमान विचार भी अत्यत महत्त्व-पूर्ण है। जब वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओ की चर्चा होने लगी, तो आपने कहा कि देश मे भावात्मक एकता की स्थापना के लिये यहा एकात्मक शासन-प्रणाली का होना अत्यत आवश्यक है। भारत इस शासन-प्रणाली

लेने ही उनकी स्मरण-शक्ति विलुप्त हो गई, ओर व
प्रिय पुत्र का नाम तक भूल गए थे।

लाहौर जेल से आप सन् १९२० मे छूटे। उस समय
के स्वागत मे जो जुलूस निकला था, वह ऐतिहासिव
का है। स्वामी श्रद्धानदजी ने उस दिन दिल्ली मे
मनाई थी।

गाधीजी से विचार-विमर्श और काग्रेस मे प्र

रिहाई के चौथे दिन ही लालाजी एक राजनीतिक
मे शामिल हुए, जो डॉ० भगवानदास की अध्यक्षता
हुआ था। आपका महात्मा गाधी से लगातार तीन f
विचार-विमश चलता रहा। स्वदेशी के प्रश्न पर
विचार-साम्य था ही, कुछ अन्य प्रश्नो पर भी हुआ
गाधीजी के महान् व्यक्तित्व ने भी कुछ चुबक का काम
और हनुमतसहायजी काग्रेस मे शामिल हो गए। इस
आप काग्रेस के प्राय सभी आदोलनो मे जेल गए। क
मे आप दिल्ली - काग्रेस के महामत्री और अखिल
काग्रेस-कमेटी के सदस्य भी हुए। काग्रेस मे आने के ब
मतसहायजी ने सशस्त्र क्राति का अवलबन त्याग दिया

लाला हनुमतसहायजी की प्रेरक शक्ति वस्तुत वीर
करजी ही थे। १९०७ मे आपको उस क्रातिकारी व
प्रेरणा मिली थी। १९५७ मे क्राति-शताब्दी-जयती
सर पर वीर सावरकर दिल्ली आए, तब पुन आप

प्रेरक पुरुष से मिले। लाला हरदयालजी के साथ भी आपने बहुत काम किया।

मेरे लिये यह एक सौभाग्य-पूर्ण सयोग ही था कि गत वर्ष दिल्ली मे मुझे लाला हनुमतसहाय-जैसे पुराने क्रातिकारी वीर के दर्शन हुए। मैने उनके क्रातिकारी जीवन के सस्मरण सुने तथा उनके वर्तमान विचारो से अवगत हुआ। जब मैं उनके घर पहुँचा, तो वह भोजन बना-खाकर विश्राम कर रहे थे। मुझे यह जानकर आश्चय हुआ कि ८० वष की अवस्था मे भी वह भोजन अपने हाथ से ही बनाते है। मुझे यह भी उनके सतत कर्म-रत जीवन का एक दृष्टात ही लगा। साथ ही विगत तीस वर्षो से वह लाला हरदयाल पर एक पुस्तक भी लिख रहे है, जो मेरे विचार से उस अद्भुत क्रातिकारी नेता पर प्रथम प्रामाणिक एव परिपूर्ण पुस्तक होगी। इसके लिये वह विगत कई वर्षो से लाला हरदयाल के अमेरिका, इँगलैड, जर्मनी आदि के प्रवास-काल के तथ्य एकत्र करने मे सलग्न है, तथा उनका इन देशो से पत्र-व्यवहार जारी है। मैने उनसे जब पूछा कि यह पुस्तक कब तक तैयार हो जायगी, तो उन्होने कहा, अभी मै कुछ कह नही सकता।

विगत गौरवशाली क्रातिकारी जीवन की तरह उनके वर्तमान विचार भी अत्यत महत्त्व-पूर्ण है। जब वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओ की चर्चा होने लगी, तो आपने कहा कि देश मे भावात्मक एकता की स्थापना के लिये यहाँ एकात्मक शासन-प्रणाली का होना अत्यत आवश्यक है। भारत इस शासन-प्रणाली

को जितनी शीघ्रता से लागू करेगा, उतना ही उसके हित मे होगा ।

मै लालाजी से मिला । उसके कुछ ही माह पूर्व देश मे १९६२ के आम चुनाव सपन्न हुए थे, अतएव राष्ट्रीय समस्याओ के एक तटस्थ चितक की भाँति उन्हे भी आम चुनाव की कुछ अहितकर एव अप्रिय प्रवृत्तियो के प्रति बडा क्षोभ था । उन्होने कहा कि चुनावो मे उम्मीदवारो द्वारा किए जानेवाले व्यय मे अधाधुध वृद्धि जनतत्र को महज एक मजाक बनाकर रख देगी । इस पर शीघ्रातिशीघ्र प्रभावशाली नियत्रण अनिवाय है ।

अँगरेजी के सबध मे लाला हनुमतसहाय उतने ही क्राति-कारी है, जितने कि वह कभी अँगरेजो के सबध मे थे । उन्होने बातचीत के दौरान अत्यत भावावेश मे कहा—

"स्वतत्र भारत मे अगरेजी को पूणत बद कर देना चाहिए, इसका नामोनिशान मिटा देना चाहिए, यहाँ तक कि अँगरेजी अखबार तक समाप्त होने चाहिए । जब तक अँगरेजी इस देश मे है, यहाँ भावात्मक एकता नही उत्पन्न हो सकती ।"

❋

१२

शचीद्रनाथ बख्शी

काकोरी-केस के क्रातिकारी अभियुक्त श्रीशचीद्रनाथ बख्शी उन क्रातिकारियो मे से है, जिनके हृदय मे क्राति की लौ जीवन के अनेक सघर्षो और विपरीत परिस्थितियो के थपेडे खाकर भी आज तक जीवित है। उनके जीवन का प्रत्येक आचरण उस लौ से दीप्त हुआ दिखाई पडता है। मेरा सौभाग्य था कि विगत कुछ समय से मै उनके सपर्क मे आया। इस सपक की घनिष्ठता मे मै यह भी भूल गया कि कभी बख्शीजी की राम-कहानी उन्ही के मुँह से सुनना चाहिए। वैसे तो मै उनके सस्मरण प्राय सुनता ही रहता था, लेकिन राम-कहानी की तो बात ही ओर होती है।

एक दिन मैने बख्शीजी से उनकी राम-कहानी सुनने के लिये उन्हे आमन्त्रित किया। उन्होने अपनी जो कहानी सुनाई वह मन को दहला देनेवाली थी।

प्रारभिक क्रातिकारी जीवन

बख्शीजी यद्यपि बगाली है, लेकिन उनका जन्म बनारस मे हुआ, और वही क्वीस कालेज से उन्होने इटर पास किया। सन् १९२१ के आदोलन के समय उन्होने पढाई-लिखाई छोड दी। उस समय वह गाधीजी के प्रभाव मे थे, यद्यपि गाधीवाद पर पूणतया विश्वास न था। तभी १९२२ मे चौरीचारा-काड हुआ। गाधीजी ने आदोलन वापस लिया, और अन्य अनक क्रातिकारी भावनाओवाले युवको की तरह उन पर भी गाधीजी के उक्त कदम की जबरदस्त प्रतिक्रिया हुई। उस समय बडे-बडे नेता यह कहने लगे थे कि अब देश कभी आज़ाद न होगा, क्योकि कुछ लोगो को गाधीजी की अलौकिक शक्ति पर विश्वास था, जिन्हे चौरीचोरा-काड के पश्चात् उनके (गाधीजी के) निणय से धक्का पहुँचा था।

बख्शीजी पहले से ही व्यायामशाला आदि चलाकर युवको का सगठन कर रहे थे। उसी दौरान सन् १९२२ के मध्य मे बगाल की अनुशीलन समिति (क्रातिकारी सगठन) ने कुछ छात्र बनारस भेजे। इनमे से रासमोहन की बख्शीजी से घनिष्ठता हुई, और तभी पता चला कि बगाल के जिन क्रातिकारियो ने आदोलन के समय अपनी क्रातिकारी गति-विधिया

स्थगित रखने का आश्वासन गाधीजी को दिया था, उन्होने उसे पुन चालू कर दिया है ।

१९२२ की गया-काग्रेस मे बख्शीजो और रासमोहन वहाँ गए, और पूरे क्रातिकारी गुट के साथ बनारस लौटे । इनमे प्रतुलचद्र गागुली, नरेद्रमोहन सेन, रमेशचद्र आचाय, रमेश चौधरी आदि थे, जो अलग मकान लेकर चुपके से रहते थे । उसी समय अनुशीलन समिति की शाखा बनारस मे स्थापित हुई । इसमे युवको की भरती की जाने लगी, और शस्त्रास्त्र भी इकट्ठे होने लगे ।

उसी समय शचीद्रनाथ को बनारस की इन गति-विधियो का पता चला। वह वहाँ पहुँचे, और इसके बाद प्रदेश के अन्य स्थानो का दौरा करके रामप्रसाद बिस्मिल, विष्णुशरण दुबलिस, सुरेश भट्टाचार्य आदि से उन्होने सपर्क स्थापित किया । फल-स्वरूप बनारस के क्रातिकारियो और शेष क्रातिकारियो के दो अलग-अलग दल हो गए । शुरू मे सदस्य बनाने के प्रश्न पर परस्पर कुछ छीना-झपटी भी होती थी, लेकिन शीघ्र ही दोनो को मिलाकर उत्तर प्रदेश का अपना अलग एक सगठन 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' बनाया गया । शचीद्रनाथजी नेता नियुक्त हुए । यह १९२३ के मध्य की बात है ।

दल को हथियार आदि लाने के लिये धन की आवश्यकता थी ही, सो इन लोगो ने १९२४ से ग्रामो मे डकैतियाँ डालना शुरू कर दिया । इससे इन लोगो का सैनिक अभ्यास भी हो जाता था, और धन की आवश्यकता भी पूरी हो जाती थी ।

लेकिन शीघ्र ही कुछ युवक क्रातिकारियो को ऐसा अनुभव हुआ कि ग्रामो मे डकैतियाँ डालना उचित नही, क्योकि इनमे अनेक बेकसूर ग्रामीण मारे जाते हैं। इस प्रश्न को लेकर काफी विवाद और मतभेद भी हुआ, लेकिन अत मे तय यही हुआ कि निजी सपत्ति न लूटी जाय। काकोरी-ट्रेन-डकैती-योजना की यही पृष्ठ-भूमि थी।

इस बीच योगेश चटर्जी हावडा-स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिए गए, और शचीद्रनाथजी भी दो क्रातिकारी पत्रो को प्रकाशित करने पर पकडे गए।

काकोरी-ट्रेन-डकैती और फरारी

सन् १९२५ मे रामप्रसाद 'बिस्मिल' के नेतृत्व मे चद्रशेखर आजाद, अशफाकउल्लाखाँ, शचीद्रनाथ बख्शी आदि अनेक युवको ने, लखनऊ के पास काकोरी मे, मेल ट्रेन रोककर, उसमे रक्खा सरकारी खजाना लूट लिया। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति एव गाधीजी द्वारा चलाए गए असहयोग-आदोलन के बाद क्रातिकारियो का यह पहला बडा काम था, जिसने सपूण देश का ध्यान अपनी ओर आकर्पित किया। इस घटना से भारतीय जनता के मन पर ब्रिटिश आतक के प्रभाव को एक बडा धक्का लगा, और बहुत-से लोगो की धारणा ऐसी बन चली कि सशस्त्र क्राति से भी अँगरेजी-साम्राज्य का मुकाबला किया जा सकता हे। काकोरी-काड से क्रातिकारी दल को जबरदस्त हानि भी पहुँची। उत्तर प्रदेश का सारा दल

छिन्न-भिन्न हो गया और चद्रशेखर आजाद को छोडकर इस काड के शेष सभी क्रातिकारी देर-सबेर गिरफ्तार कर लिए गए ।

बखशीजी तुरत फरार हो गए और कराची पहुँचे, जहा से विदेश भागने की तैयारी की । लेकिन सफलता न मिलने पर कानपुर आए और गुप्त रूप से काग्रेस - अधिवेशन मे शामिल हुए । उस समय आपने सन्यासी का भेष बना रक्खा था । यहाँ वह गणेशशकर विद्यार्थी-सहित सरदार भगतसिह, वटुकेश्वरदत्त आदि से भी मिले ।

यहाँ से बखशीजी बबई गए, और फिर से जहाज के मल्लाहो की श्रेणी मे भरती होकर विदेश जाने की तैयारी की । उसी समय यहाँ बखशीजी को ढूढते हुए काकोरी-काड के एक और फरार पहुँचे । उनका नाम था केशवचद्र । यह बखशीजी को बुलाने आए थे कि अपने प्रदेश वापस चलकर काकोरी-केस के अनिर्णीत अभियुक्त (आण्डर ट्रायल्स) क्रातिकारियो को, जिस समय उन्हे जेल से कचहरी ले जाया जा रहा हो, पुलिस की हिरासत से आजाद कराया जा सके ।

इस सबध मे बखशीजी बबई मे वीर सावरकर के बडे भाई गणेश सावरकर से मिले, जिन्हे देश-भक्ति-पूण कविता लिखने पर काले पानी की सजा हो चुकी थी । गणेशजी ने भी बखशीजी को सलाह दी कि वह उक्त साहस-पूण प्रयास अवश्य करे, उससे भारतीय जनता के मन पर अनुकूल प्रभाव पडेगा ।

वखशीजी इस दृष्टि को ध्यान मे रखकर वापस लौटे। कुछ दिन इलाहाबाद मे रहे। उन्होने योजना की पूर्ति के लिये प्रयास किया, लेकिन साधनो की कमी के कारण उसे न कर सके। इसके बाद वह बगाल चले गए और फिर बिहार मे आकर भागलपुर मे रहने लगे। इस समय तक बखशीजी पुलिस मे कुछ निश्चित हो चले थे, तभी जनवरी १९२७ मे वह एक दिन अचानक गिरफ्तार कर लिए गए। वहाँ से यह उत्तर प्रदेश लाए गए। इस समय तक अशफाकउल्लाखाँ भी अपने एक मित्र के विश्वासघात से गिरफ्तार हो चुके थे। दोनो पर अलग से मुकदमा चलाया गया। अशफाक को फासी की सजा हुई और बखशीजी को काले पानी की। जेल मे भी आप चुप न बैठे। निरतर अनशन तथा अन्य सघर्ष का क्रम चलाते रहे। एक दिन तो बरेली जेल मे इतनी हालत खराब हो गई कि शहर मे किसी ने यह समाचार दे दिया कि अनशनकारी बखशी का देहात हो गया। इस समाचार से नगरवासी अँगरेजी शासन के प्रति रोष से भर गए। दूकानदारो ने दूकाने बद कर दी, और जेल के फाटक पर प्रदर्शन किया गया। बखशीजी का यह सघर्ष देखकर आई० जी० प्रीजस ने उनसे कहा था—"आप मेरे लिये सबसे बडी 'समस्या' है।"

सन् १९३७ मे जब प्रथम काग्रेस मत्रि-मडल बना, तो आपको रिहा कर दिया गया। इसके बाद आप काग्रेस मे शामिल हो गए। आजादी मिलने पर आपने पुन काग्रेस से सबध तोड लिया।

बखशीजी जब दिल्ली मे फरारी की हालत मे थे, तो एक दिन दैनिक 'प्रताप' मे मोटे-मोटे टाइप मे छपा समाचार पढा- "काकोरी-केस के बखशीजी के घर मे डाका।' इस समाचार मे यह सूचना थी कि पुलिस बखशीजी के घर तलाशी के लिय गई, और घर की सब जायदाद—यहाँ तक कि कोयला-कडा तक—उठा ले गई।

बखशीजी का यह समाचार पढकर बडा रोष आया आर उन्होने एक पत्र काकोरी-केस के स्पेशल मजिस्ट्रेट (जिनकी आज्ञा से तलाशी हुई थी), बनारस को, एक अँगरेज पुलिस कप्तान को और एक बनारस के जिलाधीश को भेजा कि अभी मै मरा नही हूँ, इसका बदला ले लूँगा। क्रातिकारी कभी अपमान का बदला लेने से चूकता नही। इन पत्रो को डालकर वह तुरत कराची रवाना हो गए। पत्रो को भेजने का परिणाम यह हुआ कि जब बखशीजी के पिता ने अपनी सपत्ति वापस करने की दरख्वास्त दी, तो उन किताबा को छोडकर, जिन पर बखशी का नाम लिखा था, बाकी सब सपत्ति उन्हे वापस कर दी गई।

आजाद और बिस्मिल के रोचक सस्मरण

बहुत-सी बातो की चर्चा करते हुए बखशीजी ने एक सस्मरण सुनाया, एक बार उनकी उपस्थिति मे, शाहजहाँपुर मे, बिस्मिल और आजाद मे बहस छिड गई। आजाद का कहना था कि क्रातिकारी को, जब तक उसके हाथ मे पिस्तौल है,

वखशीजी इस दृष्टि को ध्यान मे रखकर वापस लौटे। कुछ दिन इलाहाबाद मे रहे। उन्होने योजना की पूर्ति के लिये प्रयास किया, लेकिन साधनो की कमी के कारण उसे न कर सके। इसके बाद वह बगाल चले गए और फिर बिहार मे आकर भागलपुर मे रहने लगे। इस समय तक बख्शीजी पुलिस से कुछ निश्चित हो चले थे, तभी जनवरी १९२७ मे वह एक दिन अचानक गिरफ्तार कर लिए गए। वहाँ से यह उत्तर प्रदेश लाए गए। इस समय तक अशफाकउल्लाखाँ भी अपने एक मित्र के विश्वासघात से गिरफ्तार हो चुके थे। दोनो पर अलग से मुकदमा चलाया गया। अशफाक को फासी की सजा हुई और बख्शीजी को काले पानी की। जेल मे भी आप चुप न बैठे। निरतर अनशन तथा अन्य सघर्ष का क्रम चलाते रहे। एक दिन तो बरेली जेल मे इतनी हालत खराब हो गई कि शहर मे किसी ने यह समाचार दे दिया कि अनशनकारी बख्शी का देहात हो गया। इस समाचार से नगरवासी अँगरेजी शासन के प्रति रोष से भर गए। दूकान-दारो ने दूकाने बद कर दी, और जेल के फाटक पर प्रदशन किया गया। बख्शीजी का यह सघर्ष देखकर आई० जी० प्रीजस ने उनसे कहा था—"आप मेरे लिये सबसे बडी 'समस्या' है।"

सन् १९३७ मे जब प्रथम काग्रेस मत्रि-मडल बना, तो आपको रिहा कर दिया गया। इसके बाद आप काग्रेस मे शामिल हो गए। आजादी मिलने पर आपने पुन काग्रेस से सबध तोड लिया।

वखशीजी जब दिल्ली मे फरारी की हालत मे थे, तो एक दिन दैनिक 'प्रताप' मे मोटे-मोटे टाइप मे छपा समाचार पढा- "काकोरी-केस के बखशीजी के घर मे डाका।" इस समाचार मे यह सूचना थी कि पुलिस बखशीजी के घर तलाशी के लिये गई, और घर की सब जायदाद—यहाँ तक कि कोयला-कडा तक—उठा ले गई।

बखशीजी को यह समाचार पढकर बडा रोष आया और उन्होने एक पत्र काकोरी-केस के स्पेशल मजिस्ट्रेट (जिनकी आज्ञा से तलाशी हुई थी), बनारस को, एक अँगरेज पुलिस कप्तान को और एक बनारस के जिलाधीश को भेजा कि अभी मै मरा नही हूँ, इसका बदला ले लूगा। क्रातिकारी कभी अपमान का बदला लेने से चूकता नही। इन पत्रो को डालकर वह तुरत कराची रवाना हो गए। पत्रो को भेजने का परिणाम यह हुआ कि जब बखशीजी के पिता ने अपनी सपत्ति वापस करने की दरख्वास्त दी, तो उन किताबो को छोडकर, जिन पर बखशी का नाम लिखा था, बाकी सब सपत्ति उन्हे वापस कर दी गई।

आजाद और बिस्मिल के रोचक सस्मरण

बहुत-सी बातो की चर्चा करते हुए बखशीजी ने एक सस्मरण सुनाया, एक बार उनकी उपस्थिति मे, शाहजहाँपुर मे, बिस्मिल और आजाद मे बहस छिड गई। आजाद का कहना था कि क्रातिकारी को, जब तक उसके हाथ मे पिस्तौल है,

किसी भी स्थिति मे अपने को पुलिस के हवाले न होने देना चाहिए। बिस्मिल कहते थे कि इस बात की कोई गारटी नही हो सकती। मान लिया जाय कि क्रातिकारी सो रहा है और पुलिस ने पिस्तौल की नोक पर उसे गिरफ्तार कर लिया, तो वह क्या करेगा? आजाद का उत्तर था कि क्रातिकारी कभी इतनी गफलत मे सोए ही नही कि उसके लिये ऐसा खतरा उपस्थित हो सके। दोनो अपने-अपने भावी बलिदान के स्वरूप का सकेत दे रहे थे—बिस्मिल को गिरफ्तार होने पर फाँसी मिली और आजाद ने पुलिस से भिडते और अनेको को अपनी गोलियो से घायल करते हुए शहादत पाई।

बख्शीजी ने एक सदर्भ मे बताया कि कुछ लोगो का यह कहना गलत है कि भारतीय क्रातिकारियो को मैक्सिम गोर्की आदि विदेशियो से ही प्रेरणा मिलती थी। उन्होने बताया कि जब वह छठी कक्षा मे पढते थे, तो उस समय उन्होने बकिमचद्र की पुस्तक 'आनदमठ' पढी थी। जिस रात को उन्होने यह उपन्यास समाप्त किया था, वह सो नही सके थे, और वही बलिदानी विचार मस्तिष्क मे चक्कर लगा रहे थे, हृदय कह रहा था कि हमे भी देश के लिये कुछ करना चाहिए। आपने कहा कि इसके बाद मैने कुछ और भारतीय किताबे भी पढी और उनसे प्रेरणा प्राप्त की।

बख्शीजी का विश्वास है कि भारत की राष्ट्र-भाषा केवल हिंदी हो सकती है। राष्ट्र-भाषा के लिये उनके हृदय मे

बडी जबरदस्त आग है। वह जब इस विषय पर बोलते है, तो उनका विगत क्रातिकारी रूप जाग उठता है। वह राष्ट्र-भाषा के सरक्षण और सवर्द्धन के लिये अपना जीवन-सवस्व—यहाँ तक कि प्राण देने को भी तत्पर है।

ॐ

१२

मुकुदीलाल 'भारत वीर'

काकोरी-केस के वीर सेनानी मुकुदीलाल गुप्त के गौरव-पूण अतीत और अभाव-ग्रस्त वर्तमान का मुझे भली भाँति ज्ञान था। उनके गौरव-पूर्ण अतीत की कल्पना इसी से की जा सकती है कि उनके असाधारण साहस, वीरता और बलि-दान की भावनाओ के कारण उन्हे 'भारत वीर' का उपाधि से विभूषित किया गया। किसी नेता या सस्था द्वारा नही, बल्कि साधारण जनता द्वारा। और, अभाव-ग्रस्त वर्तमान का हाल यह है कि वर्षो से उन्हे कष्टदायी हार्निया का रोग रहा, परतु वह इसका ऑपरेशन भी न करा सके। अभी हाल मे इसकी व्यवस्था की गई है।

मुकुदीलालजी के इन्ही परस्पर विरोधी अतीत और वर्त-मान ने मुझे उत्तर प्रदेश के इटावा-जिले की औरैया तहसील मे जाकर उनसे मिलने के लिये प्रेरित किया, आर मैंने उन्हे इस आशय की सूचना भी दे दी। कितु जब ७-८ माह बीत जाने पर भी उनसे मिलने न जा सका, तो एक दिन उन्होने मुझे पत्र लिखकर कहा कि "ऐसा ही वादा कभी पडित बनारसी-दास चतुर्वेदी ने किया था और वह अब तक नही आए।" तब मुझे लगा कि सिफ एक नही, दो-दो व्यक्तियो की साख खतरे मे है, अतएव मैने अन्य कार्य-क्रम स्थगित करके तत्काल उनके यहाँ जाने का निश्चय कर लिया, और अतत वहाँ पहुँच ही गया।

रात का समय था। बस से उतरते ही रिक्शे पर बैठा। रिक्शेवाला 'भारत वीर' से परिचित था, मुकुदीलाल से नही। एक छोटी-सी गली मे एक छोटा-सा पुराना घर। कुडी खट खटाई, तो वह सामने ही खडे थे। अपेक्षा न रहते हुए भी मुझे अपने सामने पाकर स्वाभाविक है कि वह बहुत खुश हुए। सामान्य हाल-चाल पूछने ओर जानने के बाद ही हम दोनो एक जीर्ण-शीर्ण कोठरी मे जमकर बैठ गए, और एक समर्थ जीवन की दुखद कथा चल पडी—उसके साथ ही चल पडी मेरी कलम भी।

क्रातिकारी अतीत की कहानी

"७३ वर्ष पूर्व औरैया मे ही एक सर्व-साधन-सपन्न जमी-

दार और व्यापारी परिवार मे मेरा जन्म हुआ । यह सर्व सपन्नता ही मेरे लिये अभिशाप बनी, क्योकि कमाने-धमाने की चिता न हाने से मै प्राइमरी तक ही पढ सका था । खूब खाना, दड-बैठक करना, मुगदर भाजना और कुश्ती लडना, ये ही मेरे काम थे । एक दिन मुझे एक बारात मे शामिल होने के लिये १३ मील दूर की यात्रा करनी पडी । बारात बैल-गाडी पर जा रही थी । एक पद्रह वर्षीय युवक प्रभुदयाल पाडेय हमारे साथ बेठे थे और नौकर गाडी हॉक रहा था । प्रथम युद्ध के दिन थे । एक के बाद एक मोर्चे पर जर्मनी विजय प्राप्त करता जा रहा था । जमनी की विजय के समाचार से हमे हृष होता था । इस आशा से कि अँगरेज हारेगे, तो हम लोगो की परतत्रता का बधन ढीला होगा । उसी समय मैने अँगरेजो के विरुद्ध कुछ बाते कही, जिनसे उत्साहित होकर पाडेयजी ने अँगरेजो को यहाँ से उखाडने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया । इस सबध मे मुझे भी तैयार पाकर उन्होने बताया कि एक ऐसा सगठन औरैया मे भी बनाया जा रहा है, जो अपने को शस्त्रादि से सज्जित और शिक्षित कर यथाअवसर अँगरेजी सत्ता को उखाडने का कार्य करेगा । मेरी रुचि और आग्रह देखकर उन्होने उस समय अधिक व्योरा न बताकर केवल मास्टर गेदालाल दीक्षित से मिलने की सलाह दी, जो औरैया मे ही अँगरेजी स्कूल मे प्रधानाध्यापक थे । मै बारात से लौटने पर उनसे मिला । उन्होने अँगरेजो से देश को आजाद करने के लिये नवयुवको के सशस्त्र सगठन की आवश्यकता बतलाई,

जिससे मैं सहमत था ही। शस्त्र-सग्रह क लिये धन की आवश्यकता थी, जिसके लिये हमे चिंतित होना स्वाभाविक था। दीक्षितजी मुझे तथा कुछ अन्य युवका को देश-भक्तो और वीरो की जीवनियाँ पढने के लिये देते थे। 'आनद मठ' भी उन्होने मुझे पढाया था। पडितजी चूकि लडको को एकात मे शासन के प्रति विद्रोह का उपदेश भी देते थे, अतएव पता लगने पर उन्हे स्कूल से पृथक् कर दिया गया। तब पडितजी ने स्वतत्र रूप से स्कूल खोल लिया, और हमारा घर पडितजी का अड्डा बन गया। शस्त्र-सग्रह के लिये हमने यह तय किया कि सरकारी पैसा लूटा जाय, अतएव फफूद के पास पाता स्टेशन लूट लिया, परतु वहाँ टिकट बिक्री का थोडा ही रुपया हाथ लगा। दो पुलिसवालो के भाले भी छीन लिए। इसके बाद हम लोगो ने कस्बे के एक मक्खीचूस सर्राफ का जेवरो का बक्स लूट लिया।

भाइयो ! आगे बढो, फोर्ट विलियम छीन लो।

"हम लोग समय-समय पर पर्चे छापकर भी जनता मे बाँटते, जिससे उनमे जागृति जाए। इन पर्चो मे यहाँ तक लिखा रहता था—'भाइयो ! आगे बढो, फोर्ट विलियम छीन लो।'

"एक बार पडितजी ने योजना बनाई कि एक ही दिन अपने प्रात के सभी कलक्टरो, पुलिस कप्तानो तथा अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारियो को गोली मार दी जाय, जिससे दुनिया-

भर मे तहलका मच जायगा और शायद देश को इससे आज़ादी मिल जाय । इसके लिये हम लोगो को तैयार किया गया ।

"यह योजना पूरी भी न हो पाई थी कि दुर्भाग्य-वश एक सदस्य मुखबिर बन गया, और उसी से पता लेकर पुलिस ने गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी । हम सभी गिरफ्तार हो गए । मैनपुरी-षड्यत्र-केस तैयार हुआ । पडितजी चालाकी से मुखबिर बन गए, और पुलिस उनकी दामाद की तरह खातिर करने लगी । तभी एक दिन जब केस अदालत मे प्रारभ भी न हो पाया था कि पडितजी एक मुखबिर रामनारायण को साथ लेकर रात मे भाग निकले ।

"जब जेल से कुछ साथी भाग निकले, तो हम लोगो पर सख्ती होने लगी । बेडियाँ डाल दी गई और उन्हे एक लोहे की ज़जीर से खभे या खूटे से बाँध दिया गया । रात मे १२ बजे गिनती होती थी । कुछ समय बाद हमे नैनी जेल भेज दिया गया । इसी दौरान एकमात्र पुत्र की मृत्यु का समाचार भी मिला ।

"१३ एप्रिल, १९२२ को दिल्ली मे गोली चली, तो हमने विरोध-स्वरूप कैदियो को अनशन करने के लिये प्रेरित किया । इस पर जेलर ने मुझे डडो से पिटवाया और फिर एकात कोठरी मे बद करवा दिया । बेडियाँ भी डबल कर दी गई तथा चक्की की ड्यूटी दे दी गई । अतत सजा पूरी होने पर मै जेल से छूटा ।

"घर पहुँचकर मैने कच्ची आढत की दूकान कर ली,

जिससे किसी प्रकार शाम तक पेट भरने भर को मिल जाता था। इसी समय मुझसे कुछ कार्यकर्ता मिलने आए। उन्होने बताया, सरकार ने काग्रेस का सत्याग्रह दबा दिया है, अत क्राति की आग सुलगाने के लिये देश मे युवको का सगठन बन रहा है। उन्ही से पता चला कि बगाली क्रातिकारी भी प्रात मे आए हुए है। मै अपनी भूमिका अदा करने के लिये तैयार हो गया। दूकान एक अन्य साझीदार को सौपकर झॉसी चला गया। वही मेरा परिचय प्रसिद्ध क्रातिकारी शचीद्रनाथ बख्शी से हुआ, जो पार्टी की ओर से बुदेलखड मे सगठन जमाने आए थे।

बिस्मिलजी से भेट काकोरी प्रकरण

"झासी मे एक दिन मै एक क्रातिकारी मित्र के यहा बैठा था। पुलिस ने छापा मारा। मकान की तलाशी शुरू हुई। मुझसे पूछा—'तुम कौन हो ?' मैने अपने को बूरा-बताशा बेचनेवाला बताया, और कहा, तगादा वसूल करने आया था। पुलिस ने इस पर मुझे भगा दिया। तलाशी मे दो रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। क्रातिकारी साथी को तीन साल कैद की सजा मिली।

"मै झाँसी से बनारस आ गया। यही बख्शीजी ने मेरी भेट क्रातिकारी नेता पडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' से एक घाट पर कराई। बिस्मिलजी ने मुझे क्रातिकारी दल का काम करने के लिये प्रेरित किया और मैने उन्हे इसके लिये वचन

दिया । इसके बाद मैने अपने साथियो के साथ कुछ डकैतिया डाली । लेकिन फिर यह तय हुआ कि हम लोग सिर्फ सरकारी खजाने ही लूटे, जनता के पैसे को हाथ न लगाएँ । इसी बीच कुछ हथियार बाहर से आए हुए थे, जिन्हे छुडाने के लिये तत्काल काफी धन की आवश्यकता थी, अत लखनऊ के निकट मेल ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूटने की योजना बनी । हम लोग लखनऊ आकर एक धर्मशाला मे टिके । यहा पता चला कि अमुक दिन पजाब मेल से तीन लाख रुपए का सरकारी खजाना जानेवाला है । हम लोग काकोरी के लिये रवाना हुए, लेकिन स्टेशन पहुँचने तक तीन लाख रुपएवाली वह ट्रेन निकल चुकी थी । दूसरे दिन भी ऐसा ही दुर्भाग्य हमारे हाथ लगा ।

"तीसरे दिन हम लोग बहुत पहले ही अपने स्थान पर पहुँच गए । ट्रेन रोकी गई । उसमे रक्खा सरकारी धन लूट लेने मे हमे सफलता प्राप्त हुई । धन तिजोरी मे था । उसे काटने के लिये घन मै चला रहा था । बाद मे अशफाक-उल्लाखाँ ने भी सहयोग दिया । शेष क्रातिकारी हाथो मे पिस्तौल ताने चौकसी कर रहे थे ।

काले पानी की सजा

"रुपए की थैलियो के साथ हम लोग भाग खडे हुए । सरकार को पता चल गया कि यह सब हरकत क्रातिकारियो की है, अतएव उनके घरो पर होनेतलाशियाँ लगी । मै फरार

हो गया। इन्ही दिनो बनारस मे चद्रशेखर आजाद से भेट हुई। अतत एक-एक कर हम सभी गिरफ्तार हो गए। कुछ साथी मुखविर जो बन चुके थ ! मुकदमा चला। जेल मे कई साथियो को एक साथ रक्खा गया था। हम लोगो ने जगला काटकर जलकी वरक से भागने की योजना बनाई, लेकिन जेल अधिकारियो को इसकी सूचना पहले ही मिल चुकी थी।

"अतत मुकदमे का निर्णय हुआ। हमारे ४ साथियो को फाँसी, अन्य अनेक को लबी सजाएँ और मुझे आजन्म कैद की सजा मिली। इस सजा के दौरान तीन बार मैंने जेल मे अनशन भी किया। सन् १९३७ मे कुछ प्रातो मे प्रथम काग्रेसी सरकार वनने के समय, हम सभी को रिहा कर दिया गया। मुझे भली भाँति उस समय का स्मरण है, जब विभिन्न स्थानो पर जनता ने किस उल्लास के साथ हमारा स्वागत किया था ! अनेक स्थानो पर मान-पत्र भेट किए गए थे।

"और पाँच साल बाद फिर जेल-यात्रा। इस बार क्रातिकारी आदोलन मे नही, कॉग्रेस द्वारा सचालित 'भारत छोडो' आदोलन मे। सन् १९४५ ई० मे मुक्ति मिली और नभी कॉग्रेस मे शामिल हो गया।"

इस प्रकार समर्थ जीवन की कथा समाप्त हुई—दु खात आभास के साथ। और, इसके साथ ही शुरू होती है असमर्थता की जीवन-कथा। परतु यह कथा उसकी अपनी है, लोगो का सुनाने के लिये नही। स्वतत्र भारत के व्यस्त और

उद्योगशील नागरिको को इन पुरानी कथाओ को सुनने की फुर्सत ही कहाँ ? उनके लिये शायद ये सब इतिहास की बाते बन चुकी है और इतिहास के लिये किसी प्रकार की चिता या सवेदना का क्या प्रयोजन ?

ऐसा ही एक जीवित इतिहास औरैया की जीर्ण-शीण कोठरी मे एकाकी पडा है। मेरा भावुक हृदय यह देखकर कहता है—"काश ! देशवासी इसे अभी से जबरदस्ती इतिहास न बनाते। अभी तो यह सिर्फ एक जीवन है—सम्मान-पूर्वक और सुविधा-पूर्वक जीने के लिये। इसी जीवन को मै देखने गया था इतनी दूर, जिसे लोगो ने केवल एक इतिहास समझकर भुला दिया है !"

❋

१३

मदनलाल धीगरा

भारत का सपूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि यद्यपि विदेशियो ने विभिन्न कारणों से इस देश को पराजित कर इसे पूर्णतया परतत्र बना लिया, किंतु राष्ट्र का अतर्निहित स्वाभिमान ये विदेशी शासक कभी भी दबा न सके। इसीलिये जब कभी इन विदेशियो ने सत्ता के मद मे चूर होकर इस राष्ट्रीय स्वाभिमान पर प्रहार करने का प्रयास किया, तभी इस राष्ट्रीय चेतना ने जाग्रत् और साकार होकर प्रहारकर्ता को ही धूल चटा दी। भारत देश अपने बाह्य रूप मे तो परतत्र बना लिया गया था, किंतु उसकी आत्मा सदैव स्वतत्र रही। वर्तमान शताब्दी का क्रातिकारी इतिहास ऐसी गौरवपूर्ण घटनाओ से ओत-प्रोत है।

सन् १९०९ई० । लदन की एक शाम । 'इडिया हाउस' के एक कमरे मे आज़ादी के कुछ दीवाने गुप्त वार्ता कर रहे ह । आस-पास कोई नही, सिर्फ कमरे की दीवारे । कहते है, दीवारो के भी कान होते हैं । लेकिन भय की कोई बात नही । बनी तो यह अवश्य ब्रिटिश चूने-मिट्टी की है, लेकिन अब हो चुकी है पूर्णत भारतीय, क्योकि भारतीय भवन की दीवारे है ।

एक युवक—सावरकर ! आज कजन वायली ने बडी गुस्ताखी की थी । अपने एक भाषण मे उसने अँगरेजो को उपदेश दिया—"हमे एक अच्छे पति की तरह भारत के हिंदू और मुसलमानो को खुश रखना चाहिए ।" इसी प्रकार वह अक्सर कुछ-न-कुछ बका करता है । जी चाहता है, इसकी जबान काट लूँ । हम परतत्र है, तो क्या हुआ, हमारा स्वाभिमान अभी जिदा है ।

सावरकर—" तो मुझसे यह सब क्यो बता रहे हो, मदनलाल ! वही उसे समाप्त क्यो न कर दिया ? मुझसे आकर तो तुम्हे यही बताना था कि भारत का अपमान करनेवाले को इस दुनिया से बिदा कर दिया गया, ताकि आगे किसी को ऐसी हरकत करने का दुस्साहस न हो ।"

युवक—"लेकिन सावरकरजी, मै वहाँ क्या कर सकता था ? पास मे पिस्तौल न थी कि उसे गोली से उड़ा देता ।"

सावरकर—"बस, इतनी-सी बात ? कितनी पिस्तौले तुम्हे चाहिए ?"

युवक—"सिर्फ एक !"

सावरकर—"अच्छा, हमारे रसोइए को वुलाओ।"

कुछ क्षण बाद रसोइया आता है। उसकी ओर मुख़ातिब होकर सावरकर कहते है—"देखो, ये रुपए लो और कल तक एक रिवाल्वर लाकर मुझे दो। बहुत जरूरी है।"

एक अन्य उपस्थित व्यक्ति—"सावरकरजी, एक मेरे लिये भी मँगवा लीजिए, ताकि यदि मदनलाल चूक गए, तो मेरा रिवाल्वर कर्जन वायलो को धूल चटा दे।"

सावरकर—"अच्छा, गौरीशकरजी की भी कुछ कर गुजरने की इच्छा है! भाई, तुम तो राजस्थानी वैश्य ठहरे, सोच लो, रिवाल्वर चलाने मे बहुत-से खतरे हैं।"

गौरीशकर—"अगर मदनलाल रिवाल्वर चला सकता है, तो मै क्यो नही चला सकता? वैश्य हूँ, तो क्या हुआ। ब्राह्मण, वैश्य आदि के सामान्य धर्म तो शाति-काल के लिये है। आज शाति कहाँ? जब तक देश गुलाम है, तब तक शान्ति कैसी? आज भारत के सभी वर्णों को क्षत्रिय-धर्म का निर्वाह करना है।"

सावरकर—"ठीक है, ठीक है। अभी कितने ही अवसर आएँगे रिवाल्वर थामने के। कर्जन वायली के लिये यह युवक मदनलाल ही काफी है।"

लदन मे एक दूसरी शाम। सभा-भवन लोगो से खचाखच भरा है। कर्जन वायली भी उपस्थित है, कुछ लोगो से बात कर रहे है। सहसा उनकी दृष्टि एक युवक द्वारा अपनी ओर तानी गई रिवाल्वर की ओर जाती है।

कर्जन वायली चीख उठा—"ओ माई गॉड ! व्हाई दिस रिवाल्वर ? सेव मी।"

मदनलाल—"नाउ नो बडी कैन सेव यू।" (अब तुम्हे कोई नही बचा सकता !)

धाय-धॉय की आवाज। कर्जन वायली को कई गोलिया लगती है। वह प्राण-हीन होकर गिर पडते है।

यह कोई मामूली घटना न थी। ब्रिटिश सरकार की नाक के नीचे एक भारतीय की रिवाल्वर से निकली गोलियो से केवल भारत-विरोधी कजन वायली ही नही मरा, वरन् उसकी आवाज से सारा ब्रिटिश साम्राज्य कॉप उठा। ओह, एक भारतीय का इतना साहस कि वह अँगरेज़ के घर मे घुसकर उसे गोली से उडा दे ! चारो ओर सनसनी फैल गई। हर अँगरेज के दिल मे खौफ बैठ गया। न-जाने कब किसी रिवाल्वर की नली उसके सीने की तरफ घूम जाय। किसी की हिम्मत न हुई कि इसके विरोध मे सभा तक आयोजित कर सके।

हॉ, ब्रिटिश सरकार के कुछ पिट्ठू अवश्य आगे बढे। दुर्भाग्य से वे उसी भारत भूमि के जाए थे, जिसने मदनलाल धीगरा-जैसे स्वाभिमानी और साहसी पुत्र को जन्म दिया था। मदनलाल के कार्य की निन्दा करने के लिये उन्होने लदन मे एक सभा की। लेकिन जब सत्ताधारियो मे कोई साहसी न था, तब भला उनके पिट्ठुओ मे कैसे हो सकता था ! फिर मदनलाल कोई अकेला साहसी तो था नही, जिसकी गिरफ्तारी के

बाद सब कुछ शात हो जाता। यह तो शिष्य ने ही इतना सब कुछ किया था, गुरु तो अभी सामने आए ही नही थे। सभा मे जैसे ही निदा का प्रस्ताव पारित होने लगा, सावरकर ने एक वैधानिक प्रश्न उठा दिया। एक सत्ताभिमानी अँगरेज को क्रोध जरूर आया, लेकिन दूसरे ही क्षण एक भारतीय घूसे ने उसे वही ठडा कर दिया और इसके साथ ही ठडी हो गई वह सभा और उसके प्रस्ताव।

लदन के इडिया हाउस का वही कमरा। इस बार वह प्यारा युवक मदनलाल नही है।

सावरकर—"देखिए गौरीशकरजी, मै कह रहा था न कि कजन वायली के लिये अपना मदनलाल ही काफी है।'

गौरीशकर—"जी हाँ। और आपने भी तो कमाल कर दिया। बेचारे निदा का एक प्रस्ताव भी पास न कर सके। सावरकरजी, अपनी जन्म-मूमि भी विलक्षण है! एक ओर देश-भक्त पैदा करती है, तो दूसरी ओर जयचद। एक अपनी मातृभूमि की स्वतत्रता के लिये जान देता है, दूसरा अपने छोटे-से स्वार्थ के लिये अपनी ही माता को गुलामी की बेडियाँ पहनाता है! और यही नही, बल्कि वह इन बेडियो को काटनेवालो से लडता भी है। मदनलाल के बाप को ही देखिए न। आज उसे एक बलिदानी का पिता होने के लिये गर्व का अनुभव करना चाहिए था, लेकिन वह भारत से वक्तव्य जारी करता है कि उसे एक राजद्रोही का पिता होने मे लज्जा का अनुभव हो रहा है। मैं तो कभी-कभी ऐसा समझता

हूँ कि हमारे शत्रु न०१ अँगरेज सत्ताधारी नही, बल्कि हमारे देश के ये जयचद ही है।"

सावरकर—"इसमे क्या शक है, गौरीशकरजी ! लेकिन गुलाम देश मे यही होता हे। जब कोई देश गुलाम बनता है, उम देश की अधिकाश जनता की आत्मा भी मर जानी है। इससे हमे निराश न होना चाहिए। गुलाम देश की गुलामी की ज़जीरे मुट्ठी-भर बलिदानी ही काटते है, शेष या तो मात्र दर्शक होते है या गद्दारी के साथ उनके उद्योग मे बाधा उत्पन्न करते है। यह पिता, जो आज राजभक्ति के मद मे एक बलिदानी का पिता होने मे लज्जा का अनुभव कर रहा है, देश के स्वतत्र होने पर सब जगह यही कहता घूमेगा—यह एक शहीद का पिता है।"

गौरीशकर—"आप ठीक कहते है, सावरकरजी !"

सावरकर—"लेकिन इन सब बातो पर अधिक विचार करने की ज़रूरत नही। हमे अपने कर्तव्य को समझना और निरतर काम करते रहना है। अब तो हमारे कार्य की सबसे बडी सिद्धि इसमे होगी कि मदनलाल न्यायालय मे ऐसा शानदार बयान दे कि वह भारत के भावी बलिदानियो के लिये ही नही, वरन् आनेवाली पीढियो के लिये भी प्रेरणा का स्रोत बने।"

गौरीशकर—"क्या आपको विश्वास है, मदनलाल ऐसा बयान दे देगा ?"

सावरकर—"देखिए, मदनलाल को आप भी जानते है,

वह केवल बलिदानी भावना से ओत-प्रोत हृदयवाला युवक है। इसकी सार्थकता उसने सिद्ध कर दी है। उससे अब और अधिक की आशा करना ठीक नही। एक से ही समस्त आशाएँ नही की जा सकती। उसने अपने कर्तव्य का शानदार ढग से निर्वाह किया है। अब हमारा दायित्व प्रारभ होता है। यद्यपि यह भी उसके ही माध्यम से पूरा होगा। आप भी करीब-करीब बैरिस्टर है। मदनलाल से जेल या अदालत—अच्छा हो, जेल मे ही मिले और उसे बताएँ कि मै ऐसा वक्तव्य चाहता हूँ। देखना, उसका यह वक्तव्य उसकी गोली से अधिक प्रभावशाली और बलिदानी इतिहास का एक अत्यधिक गौरव-पूर्ण अध्याय होगा।"

गौरीशकर—"निश्चित रहे। आप जैसा चाहते है, वैसा ही होगा।"

लदन की अदालत, जिसमे उस परम साहसी भारतीय युवक का मुकद्दमा चल रहा है। उसका वक्तव्य जारी है। उसकी गोली ने तो केवल एक अँगरेज कर्जन वायली की ही हत्या की थी, लेकिन अब उसके वक्तव्य का एक-एक शब्द प्रत्येक अँगरेज़ सत्ताधारी पर हजार-हजार गोलियो की मार कर रहा था। और, उधर उसके वही शब्द भारतीय बलिदानी इतिहास के पन्नो पर स्वर्णाक्षरो मे अकित होते जा रहे थे। वह भरी अदालत मे कह रहा था—

"एक राष्ट्र, जिसे सगीनो से दबाकर रक्खा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह सतत युद्ध की स्थिति मे है। उसे

हूँ कि हमारे शत्रु न०१ अँगरेज सत्ताधारी नही, बल्कि हमारे देश के ये जयचद ही है ।"

सावरकर—"इसमे क्या शक है, गौरीशकरजी ! लेकिन गुलाम देश मे यही होता हे । जब कोई देश गुलाम बनता है, उस देश की अधिकाश जनता की आत्मा भी मर जाती है । इससे हमे निराश न होना चाहिए । गुलाम देश की गुलामी की जजीरे मुट्ठी-भर बलिदानी ही काटते है, शेष या तो मात्र दर्शक होते है या गद्दारी के साथ उनके उद्योग मे बाधा उत्पन्न करते है । यह पिता, जो आज राजभक्ति के मद मे एक बलिदानी का पिता होने मे लज्जा का अनुभव कर रहा है, देश के स्वतत्र होने पर सब जगह यही कहता घूमेगा—वह एक शहीद का पिता है ।"

गौरीशकर—"आप ठीक कहते है, सावरकरजी !"

सावरकर—"लेकिन इन सब बातो पर अधिक विचार करने की ज़रूरत नही । हमे अपने कर्तव्य को समझना और निरतर काम करते रहना है । अब तो हमारे काय की सबसे बडी सिद्धि इसमे होगी कि मदनलाल न्यायालय मे ऐसा शानदार बयान दे कि वह भारत के भावी बलिदानियो के लिये ही नही, वरन् आनेवाली पीढियो के लिये भी प्रेरणा का स्रोत बने !"

गौरीशकर—"क्या आपको विश्वास है, मदनलाल ऐसा बयान दे देगा ?"

सावरकर—"देखिए, मदनलाल को आप भी जानते है,

वह केवल बलिदानी भावना से ओत-प्रोत हृदयवाला युवक है। इसकी सार्थकता उसने सिद्ध कर दी है। उससे अब और अधिक की आशा करना ठीक नही। एक से ही समस्त आशाएँ नही की जा सकती। उसने अपने कर्तव्य का शानदार ढग से निर्वाह किया है। अब हमारा दायित्व प्रारभ होता है। यद्यपि यह भी उसके ही माध्यम से पूरा होगा। आप भी करीब-करीब बैरिस्टर है। मदनलाल से जेल या अदालत—अच्छा हो, जेल मे ही मिले और उसे बताएँ कि मै ऐसा वक्तव्य चाहता हूँ। देखना, उसका यह वक्तव्य उसकी गोली से अधिक प्रभावशाली और बलिदानी इतिहास का एक अत्यधिक गौरव-पूर्ण अध्याय होगा।"

गौरीशकर—"निश्चित रहे। आप जैसा चाहते है, वैसा ही होगा।"

लदन की अदालत, जिसमे उस परम साहसी भारतीय युवक का मुकद्दमा चल रहा है। उसका वक्तव्य जारी है। उसकी गोली ने तो केवल एक अँगरेज़ कर्जन वायली की ही हत्या की थी, लेकिन अब उसके वक्तव्य का एक-एक शब्द प्रत्येक अँगरेज़ सत्ताधारी पर हज़ार-हजार गोलियो की मार कर रहा था। और, उधर उसके वही शब्द भारतीय बलिदानी इतिहास के पन्नो पर स्वर्णाक्षरो मे अकित होते जा रहे थे। वह भरी अदालत मे कह रहा था—

"एक राष्ट्र, जिसे सगीनो से दबाकर रक्खा जा रहा है, समझ लेना चाहिए कि वह सतत युद्ध की स्थिति मे है। उसे

युद्ध-भूमि से वञ्चित किया गया और एक निरस्त्र राष्ट्र के लिये खुला युद्ध सभव भी कहाँ है । इसीलिये राष्ट्र के एक शत्रु पर अपनी पिस्तौल चलाकर मैने अपने राष्ट्र के प्रति किए गए अन्यायो और अमानुषिक अन्याचारो का एक छोटा-सा बदला लिया है । हिंदू होने के नाते मै ऐसा समझता हूँ कि मेरी मातृभूमि का अपमान करनेवाला भगवान् का अपमान करता है । मै अपनी मातृभूमि की सेवा भगवान् तथा अपने पूवजो की सेवा मानता हूँ । मेरे पास न तो अच्छा स्वास्थ्य है, न धन है और न है पर्याप्त बुद्धि ही, जिससे मै मातृभूमि की भले प्रकार सेवा कर सकू । मेरे पास मेरी नसो मे खून की कुछ बूदे है, वही मै अपनी मातृभूमि की बलि-वेदी पर अर्पित करता हूँ ।"



१४

करतारसिह

सन् १८९६ मे जन्म और सन् १९१५ मे फॉसी—सिर्फ १९ साल का एक छोटा-सा जीवन-वृत्त। लेकिन कितना भव्य है वह और कितना महान् ! विश्व के बडे-से-बडे ऐतिहासिक जीवन-चित्रो के समकक्ष रक्खा जा सकता है उसे, पर कितनी बडी विडबना है और कितना बडा दुर्भाग्य कि वह भारत का एक महत्तम जीवन-चित्र भारतवासियो के ही हृदयो मे अब तक नही स्थान पा सका है, शायद उन्हे इस लघु जीवन-चित्र की महत्ता की कल्पना नही है। यह जीवन-चित्र है गदर-पार्टी के एक युवक कर्णधार करतारसिह सराबा का।

एक दिन जब गदर - पार्टी के प्रमुख नेता प० परमानद

ने अपने सस्मरण सुनाते हुए क्रातिकारी युवक करतारसिह की चर्चा की और उसे एक अद्वितीय व्यक्ति बताया, तो मै उसके बारे मे विशेप कुछ जानने के लिये प्रवृत्त हुआ और, मैने वास्तव मे उस युवक को भारतीय क्राति के इतिहास का एक असाधारण, अद्वितीय और अद्भुत सेनानी पाया। करतारसिह एक ऐसा जाज्वल्यमान नक्षत्र था, जो कुछ ही क्षणो मे सारी जगती को अपने अद्वितीय प्रकाश से चकाचौध कर सहसा अस्त हो गया।

अमेरिका-प्रवास

युवक करतारसिह १६ वर्ष की अल्पायु मे अमेरिका गया। वहॉ वह अपने परतत्र देशवासियो की अपमान-जनक स्थिति देख विद्रोही बन गया, और उसने देश की परतन्त्रता की बेडियॉ काटने का निश्चय कर लिया। अमेरिका मे ही वह लाला हरदयाल-प्रभृति शीर्षस्थ क्रातिकारियो के सपर्क मे आया और अपनी योग्यता, निष्ठा, सगठन-कुशलता आदि विशिष्ट गुणो के आधार पर शीघ्र ही गदर-पार्टी का एक प्रमुख कर्णधार बन गया। सन् १९१४ मे भारत को आजाद कराने के उद्देश्य से प्रवासी भारतीयो को लेकर 'कोमागाटा मारू'-नामक जो जहाज भारत आया था, करतारसिह उसी से भारत आए। प० परमानद जापान-स्थित जर्मन राजदूत मे भारत की सैनिक दृष्टि से महत्त्व-पूण नक्शे (वार-मैप्स) किसी तरह ले आए थे, अतएव यहॉ आकर भाई परमानद के परामर्श से

करतारसिह, प० परमानद, रासबिहारी बोस, शचीद्रनाथ सान्याल और गणेश पिगले ने कपूरथला (पजाव) के एक मदिर मे बैठकर भारत को आजाद कराने की योजना बनाई। इन लोगो ने यह योजना ठीक सन् ५७ की क्राति की तरह बनाई थी, और यह तय किया था कि २१ फरवरी, १९१५ को देश के विभिन्न कोनो पर स्थित इक्कीस सैनिक छावनियो मे एक साथ विद्रोह कर, भारत को बधन-मुक्त कर दिया जाय। २६ हजार भारतीय सैनिक उनका साथ देने के लिये तैयार थे। समस्त आवश्यक उपकरण और व्यक्ति जुटा लिए गए थे। लेकिन कृपालसिह-नामक एक व्यक्ति की गद्दारी से सारी योजना पर पानी फिर गया। पूव-सूचना मिल जाने पर समस्त छावनियो मे धर-पकड शुरू हो गई। यद्यपि करतारसिह फरार होकर सकुशल अफगानिस्तान की सीमा मे पहुँच रहे थे। वहाँ वह पुन छावनी मे गए और पकडे गए।

गिरफ्तार होने पर उन्होने सपूण दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अँगरेज जज को इस असाधारण प्रतिभावान् १९ वर्षीय युवक पर दया आई। उसने कहा—"एक बार फिर तुम अपने बयान पर विचार कर लो।" उस दिन जज ने करतार-सिह का बयान भी नही लिखा। लेकिन दूसरे दिन भी करतारसिह ने वही बयान दिया। अत मे जज को लिखना पडा—"यह ६१ अभियुक्तो मे सबसे महत्त्व-पूण व्यक्ति है।" गदर-पार्टी के अधिकाश शीर्षस्थ नेता इस आयोजना मे शामिल थे।

फॉसी के लिये धन्यवाद !

जब करतारसिह को फॉसी की सजा सुनाई गई, तो उन्होंने थैंक्स (धन्यवाद) कहा। करतारसिह ने इससे पहले यह भी कहा था—'मै फॉसी को बेहतर मानता हूँ, ताकि पुन जन्म लेकर फिर फॉसी पर लटकाया जाऊँ और यह क्रम उस समय तक चलता रहे, जब तक भारत स्वतत्र न हो जाय। यदि अगले जन्म मे कही ईश्वर ने मुझे स्त्री बनाया, तो अपनी कोख से विद्रोही पुत्र को जन्म दूँगा।"

करतारसिह का यह व्यवहार देखकर अँगरेज जेल-सुपरिटेडेट मि० टावर ने उन्हे स्नेह से शाबाशी दी थी।

इतना ही नही, १६ नवबर, १९१५ को जब उन्हे फासी दी गई, तो उसके पूव लिए गए उनके वजन मे १० पौड की अधिक वृद्धि हुई थी। वाह रे, बलिदानी ! जिस समय करतारसिह फॉसी के तख्ते की ओर बढ रहे थे, उनके अन्य साथी सीखचो के अदर से गा रहे थे—

फख़ू हे भारत को एक करतार जू जाता ह आज।
जगत और पिगले को भी तू साथ ले जाता ह आज॥
हम तुम्हारे मिशन को पूरा करेगे सगियो !
कस्म हर हिदी तुम्हारे खन से खाता ह आज॥

भावुक और कवि

करतारसिह बडे भावुक युवक थे और कभी-कभी अपनी

उत्सर्ग-भावना को काव्य के रूप मे भी अभिव्यक्त किया करते थे। उनके काव्य की कुछ पक्तियाँ है—

जो कोई पछे कि कौन हो तुम, तो कह दो बागी, ये नाम अपना।
जुलुम मिटाना हमारा पेशा, गदर का करना ये काम अपना,
नमाज - सध्या, यही हमारी, और पाठ - पूजा भी सब यही ह।
धरम - करम सब यही ह प्यारे, यही खुदा है और राम अपना,

जब करतारसिह अपने साथियो के साथ मुकदमे का निर्णय सुनने के लिये अपने बैरक से रवाना हुए, तो उन्होने प० परमानद से कहा—“भाई, कोई गाना सुनाओ।” उन्होने पूछा—“कौन-सा ?” इस पर करतारसिह ने हँसकर उत्तर दिया—“वही, हमारा हिद भी ।” और इसके बाद उन मतवाले क्रातिकारियो की ओजस्वी गीत-लहरी से जेल की दीवारो मे कपन होने लगा—

हमारा हिद भी फूले-फलेगा एक दिन, लेकिन
मिलेगे खाक मे लाखो हमारे गलबदन पहले।
हमे दुख भोगना लेकिन हमारी नस्ल सुख पाए,
ये दिल मे ठान लो अपने, ऐ हिदी मद जन पहल।

चरित्र के धनी

अमेरिका मे करतारसिह गदर-पार्टी का ‘गदर’ पत्र स्वय अपने हाथो से मशीन चलाकर छापते थे। यह पत्र कई भाषाओ मे निकलता था। भारत-सहित विश्व के विभिन्न देशो मे भारतीय क्राति की ज्वाला धधकाना इसका उद्देश्य था। यही वह हवाई जहाजो का बनाना और चलाना भी सीखते थे।

करतारसिह ने भारत आकर गॉव-गॉव मे दौड-धूप कर भारतीय क्राति का सदेश व्यापक रूप से पहुँचाया था। शस्त्रास्त्रो को खरीदने के लिये उन्हे कई बार धनिको के यहा डाके भी डालने पडे। एक दिन जब वह अपने कुछ साथियो के साथ डाका डाल रहे थे, तो उनके एक साथी ने उस घर की एक महिला का हाथ पकड लिया। महिला चिल्लाई। करतार सिह ने देखा, और पिस्तौल अपने साथी पर तानकर। कहा—"युवती के चरण छूकर क्षमा मॉगो, नही तो गोली से उडा दूगा।" साथी को वैसा ही करना पडा। युवती की मा करतार सिह से बहुत प्रभावित हुई। बोली—"बेटा, तुम इतने महान् होकर भी लूट-पाट का ऐसा घृणित कर्म क्यो करते हो ?"

तब अश्रु-विगलित नेत्रो से करतार ने कहा—"मा, मै यह अपने लिये नही, देश की आजादी के लिये कर रहा हूँ।"

इस पर उसमा ने सब धन उनके सामने रख दिया। फिर धीरे-से कहा—"बेटा, मेरी लडकी की शादी है। कुछ ता देते जाओ।" करतार ने सारा धन पुन उस मा के सामने रखकर कहा—"जितना चाहो, निकाल लो।" बाद मे उस महिला ने करतार को प्रसन्नता-पूर्वक आशीर्वाद देते हुए बिदा किया।

यही है करतारसिह का एक छोटा-सा जीवन-चित्र। अब आप ही निर्णय करे कि यह अपने हृदय - मदिर मे प्रतिष्ठित करने योग्य है या नही।

❀

१५

विष्णु गणेश पिगले

हमारे राष्ट्रीय इतिहास की यह कैसी विडबना और अपने राष्ट्रीय जीवन का कैसा दुर्भाग्य है कि हमारे अधिकाश देशवासी यह भलीभाँति नही जानते कि सन् १८५७ का भाँति वर्तमान शताब्दी के पद्रहवे वर्ष मे भी राष्ट्र को सशस्त्र क्राति द्वारा विदेशियो से मुक्त कराने का प्रयास किया गया था। यह प्रयास किसी भी प्रकार अपने पूर्व प्रयास से कम सुनियोजित और व्यापक न था। बल्कि इस शताब्दी के प्रयास की यह विशेषता थी कि इसकी आयोजना केवल राष्ट्रव्यापी न होकर, विश्वव्यापी थी अर्थात् इसकी जडे अमेरिका, कनाडा, जापान, जर्मनी, थाईलैंड, बर्मा, हिंदचीन आदि न-

जाने कितने देशो तक फैली थी। एक देश-द्रोही युवक की गद्दारी से विफल हुई इस सपूर्ण क्राति के बाद सैकडो लोग फासी पर चढा दिए गए या गोली का निशाना बनाए गए थे।

इसका कारण यही हो सकता है कि सन् १८५७ की क्राति के इतिहास की तरह गदर-पार्टी के इतिहास को वीर सावर-कर-जैसा कोई महान् इतिहासकार और प्रचारक न मिला, जो गदर-पार्टी को देश के समक्ष सशस्त्र क्राति के दूसरे महान प्रयास के रूप मे देशवासियो और ससार-वासियो के समक्ष प्रस्तुत कर सकता। उद्बुद्ध पाठक जानते होगे कि वीर सावर-कर ने ही सबसे पहले लदन मे 'प्रथम स्वातत्र्य सघष'-नामक पुस्तक लिखकर अँगरेजो द्वारा सन् १८५७ की क्राति का दी गई 'गदर' की सज्ञा को 'भारत का प्रथम स्वातत्र्य-युद्ध' सिद्ध कर दिया।

दूसरी सशस्त्र क्राति

गदर-पार्टी और उसके द्वारा आयोजित भारत की दूसरी बडी सशस्त्र क्राति के कर्णधारो मे से एक मराठा युवक विष्णु गणेश पिगले भी थे। उनका इस सपूर्ण आयोजन मे बडा म हत्त्व-पूर्ण स्थान था।

पिगले शुरू से ही अत्यत तीक्ष्ण-बुद्धि के व्यक्ति थे। धार्मिक ग्रथ बहुत अधिक पढने से उनमे वैराग्य की कुछ भावना आई और वह घर से निकल पडे। देश के अधिकाश भागो का

भ्रमण करने के बाद उनकी बुद्धि और अधिक विकसित हुई। बाद मे वह इजीनियरिग पढने अमेरिका चले गए।

सन् १९१४ की बात है—अँगरेजो का जर्मनी से महायुद्ध छिड चुका था। अमेरिका-स्थित गदर - पार्टी के नेताओ ने भारत को स्वतत्र करने के लिये यही समय सर्वोत्तम समझा। पिगले भी अपने परतत्र देश की दुदशा से परिचित थे, अतएव गदर-पार्टी के कार्यकर्ताओ के सपर्क मे आने से उनमे भी देश की आजादी के लिये उद्योग करने की इच्छा बलवती हुई। फल-स्वरूप अमेरिका और कनाडा के स्वतत्र्य-प्रेमी भारतीयो को लेकर 'कोमागाटामारू'-नामक जो जहाज वैंकुवर से रवाना हुआ, उसी मे पिगले भी भारत आए, और अपने कार्य मे जुट गए। मराठी भाषी होने पर भी वह पजाबी अच्छी जानते थे ओर बगाली भी। अतएव उनका काय-क्षेत्र इन दोनो प्रातो के साथ-साथ उत्तर-प्रदेश भी बना। उनके साथियो मे रासविहारी बोस, शचीद्रनाथ सान्याल, करतारसिह आदि थे। और भाई परमानद तो निर्देशक थे ही। जव उन्होने तीनो प्रातो और वहाँ की छावनियो मे अपनी जडे काफी जमा ली, तब पजाब के कपूरथला मे स्थित एक मदिर मे बैठकर गसविहारी बोस, करतारसिह, शचीद्रनाथ सान्याल और प० परमानद के साथ सशस्त्र क्राति की योजना तैयार की। इस समय उनके पास सामरिक महत्त्व के अत्यत महत्त्व-पूण नक्शे भी थे, जो प० परमानद किसी प्रकार जापान-स्थित जर्मनी दूतावास से लाए थे। क्राति की तारीख २१ फरवरी, १९१५ निश्चित

हुई, किंतु देश का दुर्भाग्य कि एक देशद्रोही युवक ने सारे करे-धरे पर पानी फेर दिया। उसके विश्वासघात के कारण सपूर्ण याजना मिट्टी मे मिल गई।

मेरठ छावनी मे

स्वाभाविक था कि ये क्रातिकारी इस असफलता से बहुत निराश हुए और अपने को बचाने के लिये इधर-उधर चले गए। पिगले रासविहारी बोस के साथ थे। रासविहारी बोस का यह कहना था कि सपूर्ण भडाफोड हो जाने के बाद अब हमे अगले अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए, किंतु पिंगले का साहसी हृदय न माना। वह इस असफलता को स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। अतएव वह मेरठ चले गए और सैनिक छावनी मे अपना काम करने लगे। उन्होने सोचा था कि यदि एक छावनी मे ही सफलता मिल जाय, तो शायद अन्य छावनियो के देश-भक्त सैनिक उसका अनुसरण करे। वह अपने काम मे जी-जान से जुट गए। लेकिन एक विश्वासपात्र बननेवाले मुस्लिम हवलदार ने विश्वासघात किया और उन्हे गिरफ्तार करा दिया। गिरफ्तारी के समय उनके पास जैसे बम थे, उनमे से एक भी आधी छावनी का सफाया कर देने के लिये पर्याप्त था।

देर-सबेर गदर-पार्टी के उनके अन्य साथी भी गिरफ्तार हो गए और पिगले को फाँसी की सजा दी गई। लाहौर-जेल मे जब वह अपने साथियो (करतारसिह आदि) के साथ फाँसी

की कोठरी की ओर बढ रहे थे, तब रास्ते मे पडनेवाली बैरको मे बद उनके अन्य साथी इस कविता को दोहरा रहे थे—

फख्र है भारत को एक करतार तू जाता है आज,
जगत और पिगले को भी तू साथ ले जाता है आज।
हम तुम्हारे मिशन को पूरा करेगे सगियो!
कसम हर हिदी तुम्हारे खून स खाता है आज।

मृत्यु से पूर्व इस बलिदानी ने अपनी एक इच्छा प्रकट की थी। उन्होने अपनी हथकडियाँ खुलवा कर यह प्रार्थना की थी—"भगवान्, तुम हमारे हृदयो को जानते हो। हमने जो कुछ भी किया है, अपनी मातृभूमि को बधनमुक्त करने के लिये ही।" और यह कहकर महान् क्रातिकारी पिगले ने विना किसी झिझक के फाँसी का फदा अपने गले मे डाल लिया था।

❀

१६

मेवासिह

भारतीय क्रातिकारी वीरो का इतिहास बताता है कि उन्होने राष्ट्रीय अपमान करनेवाले अँगरेज सत्ताधारियो को कभी नही क्षमा किया—फिर चाहे जितने बडे पद पर वे क्यो न रहे हो—यहाँ तक कि क्रातिकारियो ने इन अपमानकर्ताओ से उनके घर इँगलैड तक मे घुसकर बदला लिया। बगाल के नन्हे बालको तक ने अँगरेज अधिकारियो को मारकर उनसे बदला कैसे लिया, यह सभी जानते है। आजाद, भगतसिह आदि ने भी लाला लाजपतराय पर किए गए मारक प्रहारो का ऐसा ही बदला लिया और मदनलाल ढीगरा तथा उधम-सिह ने तो लदन मे क्रमश कर्जन वायली और जलियानवाला

बाग के हत्यारे जनरल डायर को मारकर ब्रिटिश सरकार के घर मे अपना आतक स्थापित कर दिया था। उधमसिंह ने दशको बाद राष्ट्र के एक बहुत बडे अपमान का शानदार ढग से बदला लिया था, जिसका निश्चय उसने बाल्यकाल मे किया था।

इसी प्रकार कनाडा मे भारत के अपमान का बदला लेने-वाले एक वीर और साहसी क्रातिकारी भाई मेवासिह भी है, जिनके सबध मे सामान्य जन अभी तक अनभिज्ञ है।

भाई मेवासिह उस समय कनाडा मे थे, जहाँ भारतीयो को बडी हेय दृष्टि से देखा जाता था, क्योकि यहाँ अधिकाश भारतीय मजदूरी और व्यापार की दृष्टि से ही आते थे। इन भारतीयो को सम्मान-पूर्ण ढग से रहने के लिये प्रेरित करनेवालो मे उस समय भाई भागसिह प्रमुख थे। वे वहाँ भारतीयो के अधिकारो के लिये सदैव लडा करते थे। फलस्वरूप कुछ गोरे अधिकारी भाई भागसिह से बहुत चिढे हुए थे और उन्होने बहुत तुच्छता पर उतरकर इस भार-तीय नेता की हत्या कराने की योजना बनाई। इसके लिये इन्होने एक अन्य सरदार बेलासिह को ही तय किया। गद्दार और स्वार्थी बेलासिह ने जाकर भाई भागसिह को गोली से मार दिया और उन्हे बचाने के लिये जब भाई वतनसिह आए, तो उन्हे भी उसने गोलियाँ चलाकर मार डाला। यह घटना सन् १९१४ की है।

कनाडा की अदालत मे हत्या का मुकदमा चला। हत्यारे

ने स्वीकार किया कि इमिग्रेशन विभाग के अधिकारियो ने ही उसे हत्या करने के लिये तैयार किया था। तभी एक दिन उस विभाग के प्रमुख अधिकारी हायकिसन अदालत मे गवाही देने आए। हत्यारे के सनसनीखेज बयान से वहाँ के स्वाभिमानी भारतीयो के हृदयो मे प्रतिहिसा की ज्वाला सुलग ही रही थी, अतएव मेवासिंह-नामक भारतीय युवक वीर ने भरी अदालत मे हायकिसन पर गोली चलाकर उसका काम तमाम कर दिया। जिस समय उसने गोली चलाई थी, जज तथा अदालत के अन्य अधिकारी मेज-कुर्सियो के नीचे छुप गए। फिर उसने सात्वना-पूर्ण वाणी मे कहा—"आप लोगो को डरने की आवश्यकता नही। मेरा उद्देश्य तो अपने राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने का था, सो मैने ले लिया।" और इसके साथ ही उसने आत्म-समर्पण कर दिया।

सपूर्ण कनाडा मे इस घटना के बाद भाई मेवासिह की ही चर्चा थी। हायकिसन की पत्नी भी इस वीर से मिलने आई थी। बाद मे फाँसी की सजा मिलनी तो निश्चित ही थी। फाँसी के बाद शहीद मेवासिह की शव-यात्रा बडे धूम-धाम से निकली। अनेक गोरे स्त्री-पुरुष भी शामिल थे। इस घटना का एक यह प्रभाव पडा कि इसके बाद कनाडा मे भारतीयो का अपमान करने का साहस किसी को भी नही हो पाता था।

१७

सूफी अबाप्रसाद

सूफी अबाप्रसाद देश के उन इने-गिने क्रातिकारियो मे से एक हैं, जिन्होने तेजस्वी और निर्भीक पत्रकारिता को अपने क्राति प्रयासो का सुदृढ आधार बनाया। और बाद मे तो यह पत्रकारिता स्वय मे क्राति की एक ऐसी ज़बरदस्त चिनगारी बन गई कि क्राति और पत्रकारिता मे कोई विभाजन-रेखा खीच पाना ही कठिन हो गया। पिछली शताब्दी के अत मे जब भारत मे पत्रकारिता का पर्याप्त विकास भी न हो पाया था, उस समय सूफी अबाप्रसाद ने अपने पत्रकार जीवन से यह सिद्ध कर दिया था कि देश-भक्ति-पूर्ण निर्भीक पत्रकारिता देश की बहुत बडी सेवा है और यह सेवा वही कर सकता है, जो

जेल की यातनाएँ सहन करने, यहाँ तक कि फाँसी का फदा चूमने के लिये पूर्णत तत्पर हो ।

सूफीजी जन्मजात क्रातिकारी थे । वह १८५७ की क्राति के दूसरे वर्ष पैदा हुए थे और इसीलिये जन्म से ही कटे हुए अपने हाथ के बारे मे वह कहा करते थे कि "यह सन् ५७ मे अँगरेजो से लडते हुए कटा था । इस जन्म मे भी मै उसी कटे हुए हाथ को लेकर आया हूँ ।" इस प्रखर देशभक्ति का ही कारण था कि आपने वकालत पढने के बाद भी उस पेशे को अख्तियार नही किया ओर निर्भीक पत्रकारिता को ही अपनाया, जिसने यद्यपि उन्हे आर्थिक रूप से तो तबाह कर दिया, किंतु उन्हे देश के शीषस्थ क्रातिकारियो की पक्ति मे लाकर अवश्य बिठा दिया ।

सूफीजी की क्राति-पूर्ण पत्रकारिता उस समय से प्रारभ होती है, जब १८९० मे उन्होने 'जाम्यूल इलूम'-नामक उर्दू साप्ताहिक निकाला । १८९७ मे इसी निर्भीक पत्रकारिता के कारण आप पर राजद्रोह का मुकदमा चला और डेढ वर्ष की सजा दी गई । इस सजा ने उनकी लेखनी को कुठित करने के बजाय और अधिक तेजस्वी तथा निर्भीक बना दिया । रिहाई के कुछ ही समय बाद उन पर दूसरा मुकदमा भी चला और इस बार उन्हे ६ वर्ष की कडी कैद हुई । सरकार की मशा तो यही थी कि यह जेल-यात्रा उनके अत का कारण बने, इसी उद्देश्य से उन्हे तरह-तरह की यातनाएँ भी दी गई । लेकिन अभी सूफीजी द्वारा सरकार को और अधिक समय तक नाको

चने चबवाने थे, अतएव सभी यातनाओ का सामना करके भी वह सकुशल बाहर आ गए ।

इसके बाद तो सरकार ने उनके समक्ष बहुत बडे-बडे आकर्षण भी उपस्थित किए । एक हज़ार मासिक वेतन तक की नौकरी देनी चाही, लेकिन सूफीजी पर इन सब बातो का कोई असर न हुआ । इसके बाद सूफीजी नेपाल चले गए । वहाँ भी ब्रिटिश सरकार ने उनका पीछा न छोडा । नेपाल के जिस प्रमुख अधिकारी ने उन्हे आश्रय दिया था, उसे पद-च्युत होना पडा । उन्हे भी पकडकर लाहार लाया गया, किंतु सरकार उन्हे किसी कानूनी शिकजे मे पकड न सकी । १९०९ मे सूफीजी ने पजाब से 'पेशवा'-नामक पत्र निकाला, और इससे क्रान्ति सदेश का प्रसार किया ।

सूफीजी पूर्णत एक साधु का जीवन व्यतीत करते थे, और गेरुवा वस्त्र ही पहनते थे । उनमे आजादी की भावना इतने उग्र रूप से व्याप्त थी कि इसकी चिता मे कभी-कभी वह रो पडते थे । वह कहते थे—"भारतीयो की अपमान-जनक स्थिति का बस एक ही इलाज है, और वह है स्वराज्य । गैर की गुलामी मे हम कभी भी इज्जतदार नही बन सकते । स्वराज्य मे ही सारे सवालो का हल है । हाथी के पॉव मे सब पॉव समा सकते है । इसलिये हमको पूर्ण स्वराज्य की कोशिश करनी चाहिए ।" इसके साथ ही 'निर्भीक रहो' यही उनका दूसरो को मूल-मत्र था, क्योकि उनके जीवन का भी मूल-मत्र तो यही था ।

लेकिन अब तक सूफीजी इस नतीजे पर पहुँच गए थे कि

उन्हे यह देश छोडकर विदेश मे अँगरेजो के विरुद्ध मोर्चा जमाना चाहिए। अतएव वह ईरान चले गए। यद्यपि यह निर्णय उन्होने लाला हरदयाल से विचार-विमर्श के बाद ही किया था। यहाँ भी अँगरेजो ने उन्हे न छोडा। वह कई बार घेर लिए गए, लेकिन स्थानीय जनता ने सदैव उनकी रक्षा की। एक बार तो घिर जाने पर उन्हे बुरका ओढकर अपने को बचाना पडा। और, एक बार उन्हे व्यापारियो के सदूक मे बद होना पडा। यहाँ उन्होने 'आब हयात'-नामक पत्र निकाला, और कई किताबे भी लिखी। सूफीजी ने शीघ्र ही ईरानवासियो के हृदयो मे अपना स्थान बना लिया, जो इन पर जान देने को भी तत्पर रहते थे, वह यहाँ देवता की तरह पूजे जाते थे।

सूफीजी के पीछे जासूसो का ताँता लगा रहता था, लेकिन कभी उन्हे कोई फँसा न पाया। एक बार एक व्यक्ति ने उन्हे पकडवाना चाहा, लेकिन सूफीजी ने ऐसा खेल खेला कि उलटे वही पकड लिया गया। एक बार एक सूटेड-बूटेड जासूस को उन्होने ऐसा धिक्कारा था कि वह पैरो पर पडकर क्षमा मागने लगा।

ईरान मे पहले तो सूफीजी अँगरेजो से बचकर निकलते रहे, लेकिन १९१५ मे जब अँगरेजो का यहाँ अच्छा प्रभुत्व स्थापित हो गया, तब उन्हे गिरफ्तार कर लेने मे सफलता मिल गई। उन्हे कोर्ट माशल की आज्ञा हुई, लेकिन इसके एक दिन पहले ही उन्होने समाधि लगाकर प्राण त्याग दिए और दूसरे दिन शत्रु ओ को उनका निर्जीव शरीर ही हाथ लगा। अत तक

सूफीजी विजयी ही रहे। शत्रु कभी उन्हे परास्त न कर सके। मृत्यु के बाद सूफीजी की अतिम यात्रा मे हजारो की सख्या मे ईरानवासी सम्मिलित हुए और उनके बिछोह मे आसू बहाए थे।

आज भी ईरान मे उनकी समाधि बनी हुई है और उस पर लिखा है—"हिदुस्तानी देश-भक्त आका सूफी"। आज आजादी के १७ साल बाद भी हमारे और आपके लिये यह विचार की बात है, क्या हमारे देशवासियो ने अपने इस देश-भक्त का उतना ही सम्मान किया, जितना विदेश मे उसे प्राप्त हुआ, या है ?

१७

बतासिह धामिया

सन् १९१९ मे जब सत्तारूढ अँगरेज सरकार की सहमति और समर्थन से पजाब के जालियाँवाला बाग मे लगभग एक हजार भारतीयो की हत्या कर दी गई, तो सपूर्ण भारत मे क्राति की ज्वाला धधक उठी। इसी ज्वाला की एक शक्ति शाली और तेजस्वी लपट 'बब्बर अकाली आदोलन' के रूप मे प्रकट हुई, जिसने कितने ही अन्यायी अँगरेज सत्ताधारियो और उनके किराए के टट्टुओ को तो झुलसाया ही, साथ ही अनेक सिक्ख वीरो की भी इसमे आहुति हो गई।

वीरो की इन्ही आहुतियो मे एक महत्त्व-पूर्ण आहुति थी बतासिह धामियाँ की, जिसके नाम से पुलिसवालो और अन्य

अँगरेज अधिकारियो की रूहे कॉपती थी। भाई बतासिंह धामियाँ उस महान् शहीद धन्नासिह के साथी थे, जिसने पुलिस के हाथो मे पडने के बजाय अपने ही हाथो से मरना श्रेयस्कर समझा तथा उसी चपेट मे ६ पुलिसवालो को भी अपने साथ लेता गया। धन्नासिह ने पुलिसवालो से अपना हाथ छुडाकर पस मे रक्खा हुआ बम पटक दिया था, जिससे स्वय तो समाप्त हुए ही, साथ ही ५ पुलिस कास्टेबिल और पुलिस कप्तान हार्टन को भी यम-लोक पहुँचा दिया था। बतासिह धामियाँ की शहादत भी कुछ ऐसी ही असाधारण है।

जैसा पहले ही जिक्र आ चुका है कि बतासिह के नाम से पुलिसवालो की रूहे कॉपती थी। इसका कारण यह था कि यह कई गद्दारो को उनके घर मे घुसकर मौत के घाट उतार चुके थे, सशस्त्र पुलिस की छावनी मे घुसकर उनके हथि-यार छीन लाए थे और पुलिस की नाक के नीचे बडे सरकारी अधिकारियो के यहाँ डाके डालकर दल के हथियारो के लिये धन ला चुके थे। यही कारण था कि कई बार पुलिसवाले इन्हे पकडने आए, लेकिन अपने प्राणो के मोह के कारण इनसे क्षमा माँगकर चले गए। लेकिन अतत पुलिस की चालबाज़ी और धोखेबाजी से वे सकट मे पड ही गए। क्रातिकारी वीरो का इतिहास बताता है कि कभी पुलिसवाले इन्हे आमने-सामने मुठभेड मे नही पकड पाए, उन्होने हमेशा इसके लिये धोखे-बाजी और गद्दारी का सहारा लिया। इस मामले मे भी यही हुआ। पुलिस कही एक ऐसे व्यक्ति को पकडने मे सफल

हो गई, जिसका परिचय बतासिह से भी था। उसको पुलिस वालो ने यही धमकाया कि यदि अपनी जान की खैर चाहते हो, तो बतासिह और उनके साथियो का पता बता दो। देश के उस दुश्मन ने यही किया। उसने इन क्रातिकारियो से सबध बढाया और एक दिन जब बतासिह तथा उनके दो साथी बर्यामसिह और ज्वालासिह उसके घर पर बैठे हुए थे, तो इसने पुलिस को सूचना दे दी। इस पर पुलिस और सेना ने तत्काल आकर गॉव घेर लिया।

अपने को घिरा हुआ पाकर ये तीनो एक मकान की छत के कमरे मे चले गए और वहॉ से गोलियाँ चलाने लगे। दोनो ओर से जमकर सघर्ष हुआ। पुलिस इतने से ही न मानी। उसने अत्यत क्षुद्रता और कायरता-पूर्वक उस घर मे आग लगा दी। लेकिन ये वीर उस समय भी लगातार गोलिया चला रहे थे। तभी एक गोली बतासिह को आकर लगी और एक ज्वालासिह को पहले ही लग चुकी थी। दोनो ही बहुत घायल होकर अशक्त हो चुके थे। तब तक बतासिह को एक बात सूझी। उन्होने बर्यामसिह से कहा—"भाई, तुम यहॉ से किसी प्रकार निकल भागो, ताकि आगे इसका बदला ले सको। और, जाने से पहले इस साथी पर एक मेहरबानी करते जाओ। अपनी एक गोली मेरे लिये खच कर दो। मै पुलिसवालो के हाथो पडने के बजाय अपने प्रिय साथी के हाथो मरना ज्यादा पसद करता हूँ।"

यह सुनकर बर्यामसिह की ऑखो से अश्रुधारा बह चली।

वह न भागना चाहते थे और न अपने प्रिय वीर साथी को अपने हाथो मारना ही । लेकिन बतासिह ने इसके लिये उनसे बार-बार कहा । तब उस साथी ने अपना दिल कडा कर इस कठोर कतव्य का पालन किया । वह एक पिस्तौल बतासिह को देते गए, ताकि पुलिस के नजदीक आने से पूर्व वह अपने को स्वय समाप्त कर दे । ओह, कैसा विचित्र होता है वीरो का खेल !

इसके बाद बर्यामसिह वहाँ से निकल भागने मे सफल हो गए और उन्होने कुछ और समय तक साथी के खून का बदला लेने का प्रयास किया ।

बतासिह धामियाँ जितना शौर्य ओर वीरता के धनी थे, उतने ही चरित्र के भी । एक बार उनके एक साथी ने स्त्री का सतीत्व भग करने का प्रयास किया, तो वह उस पर गडासा लेकर दौडे, लेकिन एक अन्य साथी ने बचा लिया । उनका कहना था कि ऐसे चरित्र-हीन ही किसी पुण्य काय को दूषित करते है ।

बतासिह का निश्चय था कि जब तक देश आजाद न होगा, हम चैन से न बैठेगे, सघर्ष जारी रक्खेगे । आज देश आजाद है । क्या आजादी के बाद ऐसे बलिदानियो को विस्मरण कर देना उचित होगा, जिहोने इस आजादी के लिये ही अपना जीवन बलिदान कर दिया ?

१८

नलिनी बागची

एक बार विनोद-ही-विनोद मे हिदोस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (क्रातिकारी दल) के प्रधान सेनापति शहीदे आजम चद्रशेखर आजाद ने एक सच्चे क्रातिकारी के जीवन-दशन को स्पष्ट करते हुए सरदार भगतसिह से कहा था—"फाँसी-वाँसी का फदा तो तुझे ही मुबारक हो। मेरे हाथ मे तो जब तक यह बमतुलबुखारा (उनकी माउजर पिस्तौल) मौजूद है, कौन ऐसा माई का लाल है, जो मुझे जिदा पकड ले।" दुनिया जानती है कि आजाद ने किस शानदार ढग से इस जीवन-दर्शन का निर्वाह किया। लेकिन आजाद से भी पहले बगाल के एक सपूत नलिनी बागची ने अपने जीवन और

मृत्यु, दोनो से ही एक महान् क्रातिकारी का आदर्श उपस्थित किया था। नलिनी बागची शीर्षस्थ क्रातिकारी होने पर भी फॉसी पर नही चढे, लेकिन उनकी मौत जितने गौरव-पूर्ण ढग से हुई, उसे देखकर एक बार फॉसी का फदा भी शरमा जाए।

सन् १९१६ मे, क्रातिकारी के रूप मे, नलिनी बागची की कर्म-शीलता और सक्रियता उस समय से प्रारभ होती है, जब गदर-पार्टी के सयोजन मे सशस्त्र क्राति के द्वारा अँगरेजो से सत्ता छीन लेने का विश्वव्यापी प्रयास विफल हो चुका था तथा फाँसी, लबी सजाओ और नृशस दमन-चक्र के कारण शेष स्वातत्र्य-प्रेमियो मे आतक और निष्क्रियता की स्थिति विद्यमान थी। नलिनी बागची के कार्य का महत्त्व इसीलिये विशेष है कि उन्होने ऐसी विपरीत और बाधक परिस्थितियो मे अपने कठिन कर्तव्य का पालन किया।

वह सबसे पहले विहार मे क्रातिकारी आदोलन का विस्तार करने के उद्देश्य से गए और भागलपुर कॉलेज मे भर्ती हो गए। वहाँ शीघ्र ही पुलिस की नजरो मे चढ जाने के कारण उन्हे गुप्त रूप से कार्य करने का निश्चय करना पडा, किंतु जब गिरफ्तारी अवश्यभावी हो गई, तब वह विहार से बगाल चले गए। वहाँ भी शीघ्र ही उनके सामने वही समस्या उत्पन्न हो गई। अतत पार्टी को तय करना पडा कि वह अपने नेता को किसी सुरक्षित स्थान पर भेजे और इसी दृष्टि से उन्हे असम भेज दिया गया।

लेकिन नलिनी बागची-जैसे प्रमुख कार्यकर्ता की जानकारी

शीघ्र ही वहाँ की पुलिस को भी मिल गई और एक रात, जब वह अपने साथियो-सहित सो रहे थे, पुलिस ने आकर उस मकान को घेर लिया। सौभाग्य से क्रातिकारियो को इसकी सूचना तुरत मिल गई। अतएव इससे पहले कि पुलिस कोई कार्रवाई करती, नलिनी और उनके साथियो ने उलटे पुलिस पर गोली बरसाना शुरू कर दिया। पुलिस इसके लिये तैयार न थी, इसलिये वह मोर्चा छोडकर भाग खडी हुई। क्राति कारी भी पुलिस की इस स्थिति का लाभ उठाकर पहाडी पर जा छिपे। लेकिन खिसियानी पुलिस ने वहाँ भी इन लोगो को न छोडा और भारी शक्ति के साथ इन स्वातत्र्य-प्रेमी क्राति कारियो पर आक्रमण कर दिया। पुलिस की शक्ति के सामने ये मुट्ठी-भर क्रातिकारी वीर कब तक टिकते, फल-स्वरूप दो को छोडकर शेष सभी साथी मारे गए। इन दो मे से एक नलिनी भी थे।

नलिनी पहाड के रास्ते ही भागे। विना अन्न के दर्शन किए लगातार एक सप्ताह की दुर्गम यात्रा के बाद वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ उन्हे ट्रेन मिल सकती थी। वह किसी प्रकार बच तो गए, लेकिन पहाडी रास्ते पर एक जह-रीला पहाडी कीडा शरीर के कई स्थानो पर चिपक जाने के कारण मानो वह मृत्यु के मुख मे ही पहुँच गए हो और मृत्यु भी ऐसी-वैसी नही, बहुत दर्दनाक।

वह किसी प्रकार हावडा तो पहुँच गए, लेकिन तब तक उनके शरीर मे जहर फैल चुका था और जल्दी न छूटनेवाले

उस कीडे के कारण शरीर मे असह्य वेदना और जलन हो रही थी। हावडा मे वह अपने जिन साथियो के पास गए, उनमे से कोई भी मिला नही और उसी समय उन्हे भयकर रूप से चेचक निकल आई। ऐसी कि मुह सूज गया और कुछ दीखता ही न था। ऐसी दशा मे भी वह एकात मे एक पेड के नीचे पडे रहते थे। अपने इलाज के लिये किसी से कह नही सकते थे—किसी अस्पताल या डॉक्टर के पास जा नही सकते थे। पुलिस द्वारा पकडे जाने का भय जो था।

एक सच्चे क्रातिकारी को जीवन मे अपनी पराजय कैसे स्वीकार हो सकती थी। इस दशा मे यदि वह मर भी जाते, तो शायद उनकी लाश लावारिश समझकर विना कफन के ही गगा मे प्रवाहित कर दी जाती। या फिर चील-कौवे उस बलिदानी शरीर को अपना भोज्य मान लेते। लेकिन तभी सौभाग्य से उनका एक क्रातिकारी साथी उधर से निकला। अपने महान् साथी की यह दुर्दशा देखकर उसका हृदय चीत्कार कर उठा। ओह, देश के दीवानो का यही हाल होता है ?

यह साथी नलिनी को एक मकान मे ले गया और एक अँधेरी कोठरी मे रखकर, भगवान् का नाम लेकर कुछ घरेलू इलाज करने लगा। देश को अभी कुछ दिन और इस महान् क्रातिकारी की सेवाओ को प्राप्त करने का सौभाग्य मिलना था, अतएव नलिनी मृत्यु के मुख से वापस आ गए।

स्वस्थ होते ही नलिनी अपने काय की दृष्टि से ही ढाका गए। उनके प्रमुख साथी तरिणोजी उनके साथ थे। वहाँ भी

पुलिस ने क्रातिकारियो की उपस्थिति का आभास पा लिया और १५ जून, १९१८ को प्रात काल पुलिस ने उस मकान को घेर लिया, जिसमे ये क्रातिकारी थे। दोनो ओर से गोलिया चली। तरिणीजी को गोलियाँ लगी और वह वही समाप्त हो गए। नलिनी के शरीर मे भी गोलियाँ लगी थी, किंतु अपने साथी के मरने से उनमे और भी अधिक प्रतिहिंसा जाग्रत् हो गई थी। इतना घायल हो जाने के बाद भी इस क्रातिकारी ने पुलिस के घेरे से भाग निकलने का प्रयास किया और वह कुछ सफल भी हुए। किंतु पुलिस ने उनका पीछा किया और लगातार गोलियाँ चलाकर उन्हे गिरा दिया।

जब नलिनी निश्चित रूप से मृत्यु के सामने थे। बस—

कोई दम का मेहमा हूँ, ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ

और इधर पुलिस इस बलिदानी क्रातिकारी की मजबूरी का लाभ उठाने की चिंता मे थी। वह इस क्रातिकारी से कुछ कबुलवाना चाहती थी। लेकिन जिसने सारी जिदगी कभी भी हार न मानी हो, वह अतिम क्षण मे इस मामूली नौकरशाही से कैसे हार मान सकता था। वह पुलिस के हर प्रश्न पर मौन ही रहा और सिर्फ यही कहता—"भाई, मुझे शाति से मरने दो।" और तो और उसने नाम तक बताने से इकार कर दिया। पुलिस ने हारकर कहा—"भाई, देश के लिये कुछ सदेश ही दे दो।" इस पर भी उसका उत्तर था—"यही कि मैंने पुलिस से शाति से मरने देने की प्रार्थना की थी।" ओह,

आश्चर्य है कि मृत्यु के मुख मे भी मन और मस्तिष्क की इतनी दृढता और स्थिरता ! क्या सिद्ध योगी से भी कोई इससे अधिक दृढता और स्थिरता की अपेक्षा कर सकता है ?

इस प्रकार एक शानदार जिदगी और उससे भी अधिक शानदार मौतवाला यह महान् क्रातिकारी शुरू से आखीर तक विजय-श्री का वरण करता हुआ चला गया और इसके साथ ही देश के बलिदानी इतिहास मे अपनी एक अमिट छाप छोड गया ।



१९

डॉ० मथुरासिह

फाँसी के फदे की प्रतीक्षा कर रहे ३४ वर्षीय डॉ० मथुरा-सिह से जब उनके अनुज जेल मे मिलने गए, तब अपने अग्रज से अतिम बिदा लेते समय वह रो पडे थे । इस पर उस शहीद डॉक्टर ने उन्हे समझाते हुए कहा था—"यह वक्त तो खुशियाँ मनाने का है । क्या सिख भी किसी को देश के लिये मरते देखकर रोया करते है ? मुझे तो बडा सतोष है कि भारतीय क्राति के लिये यथाशक्ति मैने उद्योग किया ।" इस प्रकार डॉ० मथुरासिह ने सिक्खो की बलिदानी परपरा का बहुत शानदार ढग से निर्वाह किया था ।

आजाद हिद सरकार के राजदूत

वैसे डॉ० मथुरासिह ने भारतीय क्राति के लिये अनेक

महत्त्व-पूर्ण कार्य किए, परतु शायद उनका सबसे महत्त्व-पूर्ण एव ऐतिहासिक कार्य है प्रथम आज़ाद हिंद सरकार का राजदूत बनना। यह प्रथम आज़ाद हिंद सरकार राजा महेद्रप्रताप ने, १ दिसबर, १९१५ को, अफगानिस्तान मे स्थापित की थी। डॉ० मथुरासिह इस सरकार के राजदूत नियुक्त किए गए थे, और वह स्वण-पट्ट पर लिखित एक पत्र लेकर रूस के सम्राट् ज़ार के पास गए थे, जिसमे 'आज़ाद हिंद सरकार के राष्ट्रपति' ने भारत की आजादी के लिये रूस से सहयोग के लिये अनुरोध किया था। वह जब रूस मे थे, तभी अँगरेज़ो को उनकी वहाँ उपस्थिति का ज्ञान हो गया और उन्होने ज़ार को डॉ० मथुरासिह की गिरफ्तारी के लिये राज़ी कर लिया। परतु सभी रूसी लोग इस विश्वासघात के पक्ष मे न थे। जब डॉ० मथुरासिह ताशकद मे थे, तभी वहाँ के गवनर ने उन्हे गिरफ्तारी से पहले ही रूसी सीमा से बाहर निकल जाने की सुविधा प्रदान कर दी।

रूसी सम्राट् के इस व्यवहार से स्वाभाविक है कि आजाद हिंद सरकार को धक्का पहुँचा, अतएव उसने जापान की ओर आशा-भरी दृष्टि से निहारा। डॉ०मथुरासिह राजदूत थे ही, अतएव उन्हे जापान से सहयोग प्राप्त करने के लिये वहाँ भेजा गया। जब वह चुपके-से रूसी सीमा को पार कर जापान जा रहे थे, तभी अँगरेज जासूसो ने उन्हे रूसी सीमा के अदर ही गिरफ्तार कर लिया। अतत उनको पजाब लाया गया और उन पर मुकदमा दायर किया गया। इस समय अँगरेज सर-

कार ने उन पर बहुत जोर डाला कि वह आजाद हिद सरकार के भेद बता दे, तो उन्हे छोड दिया जायगा, लेकिन वह टस-से-मस न हुए। आखिरकार मुकदमे का ढोग रचकर उन्हे फॉसी की सजा दे दी गई। २७ माच, १९१७ को डॉ० मथुरासिह देश के लिये बलिदान हो गए।

क्राति-भावना का उदय

मथुरासिह एक योग्य डॉक्टर बनना चाहते थे, इसीलिये वह अपने देश से अमेरिका के लिये रवाना हुए। लेकिन शघाई मे उन्हे पता चला कि अमेरिका जाने के लिये उनके पास रुपए कम है। अतएव वह शघाई मे ही रुक गए और उन्होने वही डॉक्टरी शुरू कर दी। वहॉ उनकी डॉक्टरी चल निकली, और उन्होने वहॉ काफी रुपया एकत्र कर लिया। तभी कुछ सिक्ख बधु कनाडा जा रहे थे, डॉ० मथुरासिह भी उनके साथ कनाडा चले गए। लेकिन जब यह दल बदरगाह पर पहुँचा, तब उन सभी को कनाडा मे प्रवेश करने से रोक दिया गया। बहुत तर्क-वितर्क के बाद डॉ० मथुरासिह को प्रवेश करने की अनुमति मिल गई, लेकिन जहाज से उतरने के बाद वह इमिग्रेशन अधिकारियो से अपने शेष साथियो के लिये लड पडे। इसका परिणाम यह हुआ कि कनाडा की अदालत ने उन्हे भी उलटे पॉव शघाई लौटने का आदेश दे दिया।

डॉ० मथुरासिह जब पहले-पहल शघाई मे आए थे, तब अमेरिका की गदर-पार्टी के कुछ समर्थको के सपर्क मे आने से

उनके हृदय मे क्राति का बीज पड चुका था, इस वार कनाडा की घटना ने उस बीज को हरे-भरे पोवे का रूप प्रदान कर दिया । वह वहाँ रुककर प्रवासी भारतीयो को भारत मे क्राति के लिये तैयार करने लगे । अब तक उनका सपक गदर-पार्टी के नेताओ से स्थापित हो चुका था ।

तभी कोमागाटामारु जहाज़-सबधी घटना हुई, जिसमे कनाडा से हजारो की सख्या मे प्रवासी भारतीय भारत मे क्राति करने के लिये चल पडे । डॉ० मथुरासिह भी इस जहाज के पीछे दूसरे जहाज से भारत पहुँचे । किसी प्रकार अपने को पुलिस से बचाकर वह लाहौर पहुँचे और करतारसिह आदि गदर-पार्टी के क्रातिकारियो की उस योजना मे शामिल हो गए, जिसका उद्देश्य २१ फरवरी, १९१५ को पूरे देश मे एक साथ क्राति करके देश को अँगरेजी दासता से मुक्त करना था। किंतु दुर्भाग्य से यह योजना एक युवक की गद्दारी से निष्फल हुई। तभी सारे देश मे गिरफ्तारियाँ प्रारभ हो गई । डॉ० मथुरासिह गुप्तचरो को चकमा देकर काबुल भाग गए । वहाँ पहले तो अफगानिस्तान-सरकार ने उनको गिरफ्तार कर लिया, परतु बाद मे राजा महेद्रप्रताप ने उन्हे रिहा करवाकर अपने साथ रख लिया और उनके तथा अन्य क्रातिकारियो के सहयोग से काबुल मे भारत की प्रथम आज़ाद हिंद सरकार बनाई।

डॉ० मथुरासिह का ३४ वर्ष का सतत सघर्षशील और बलिदानी जीवन सभी के लिये प्रेरणाप्रद है।

❀

२०

सोहनलाल पाठक

ब्रिटिश शासित बर्मा की एक जेल। फाँसी की सजा प्राप्त भारतीय क्रातिकारी प० सोहनलाल पाठक कोठरी मे बद है। तभी बर्मा का गवनर जेल देखने आता है। उसकी निगाह इस स्वाभिमानी और मतवाले भारतीय युवक पर पडती है। उसके मन मे आता है—एक गुलाम देश का जवान विना किसी विशेष अपराध के ही फाँसी पर चढ रहा है। आखिर उसने अपने देश की आजादी की ही आवाज तो बुलद की है, कोई हमारे देश पर आक्रमण तो किया नही, क्यो न इसे फाँसी से बचा लिया जाय। लेकिन इसे माफी तो माँगनी ही पडेगी। हम ब्रिटिश राज्य के बागियो को ऐसे ही कैसे छोड सकते है। इसी विचार-

शृखला के साथ वह प० सोहनलाल से बोला—"मिस्टर, अगर तुम माफी माँग लो, तो हम तुम्हारी फासी की सजा अपनी कलम से रद्द कर देगे।"

"माफी ? कैसी माफी श्रीमान् ?" उसने झिडकी-भरी हँसी के साथ कहा—"माफी तो आपको मुझसे मागनी चाहिए, जो अनीति और अन्याय से हमारे देश पर शासन कर रहे हैं। हमने क्या किया है ? हमने तो सिर्फ अपने देश की आजादी की आवाज ही उठाई है। जब देश हमारा है, तब क्या हम इसकी आजादी की माँग नही कर सकते ? लाट साहब, न्याय और सौजन्य का तकाजा तो यह है कि आप मुझसे माफी मागे।"

लाट ने सोचा, अजीब है ये भारतीय भी। मरना तो इनके लिये जैसे हँसी-खेल है। मै तो इनके भले की बात करना हूँ और ये समझते ही नही। लेकिन लाट क्या जानता था कि ये मतवाले क्रातिकारी मृत्यु मे ही जीवन के दर्शन करते है।

और, आ गई फाँसी की निर्मम घडी भी! सारी तैयारी पूण थी। फाँसी का फदा बेसब्री से भारतीय वीर का इतजार कर रहा था। जल्लाद भी खडा था अपने निदय कर्तव्य को पूरा करने के लिये। तभी वह अँगरेज फिर घटना-स्थल पर आया। न-जाने क्यो उसका मन भारतीय जवान को बचाने के लिये हो रहा था। उसने फिर प० सोहनलाल के समक्ष जीवन-रक्षा का वही आकर्षण उपस्थित किया। परतु इस बार तो वह और भी ज्यादा बिगड पडे उस पर। सच्चे क्राति-

कारी को तो जीवन नही, मृत्यु ही सबसे बडा आकषण होती है। स्वाभाविक था कि सोहनलाल इसको कैसे सहन कर सकते। वह लाट की बातो की उपेक्षा करके स्वय फासी के फदे की ओर बढ गए। इस प्रकार एक महान् क्राति कारी का शानदार अत हो गया। शानदार तो यहा तक कि पहले जल्लाद ने इस देवपुरुष को फॉसी लगाने से इकार कर दिया। उसने अपनी नौकरी को भी दॉव पर लगाते हुए कहा—"मै कुटिल जनो को फॉसी लगाता हूँ, जो हत्या, डकैती आदि गभीर अपराधो के अपराधी होते है, ऐसे देवपुरुषो को नही, जैसे प० सोहनलाल है।"

जेल-अधिकारियो के लिये यह अभूतपूव समस्या थी—जल्लाद ने फासी लगाने से इकार कर दिया था। अत मे एक ईसाई ने यह जघन्य कार्य किया तथा भारत-माता का वह प्रिय पुत्र अपनी माता की ही मुक्ति के लिये अपनी धरती और अपने स्वजनो से हजार मील दूर शहीद हो गया।

प० सोहनलाल गदर-पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ता थे, तथा उन्हे अमेरिका-स्थित गदर-पार्टी ने वर्मा मे अपना काम करने के लिये भेजा था। उस समय ब्रिटिश फौजो मे बगावत उत्पन्न करने की आवश्यकता थी, इसीलिये प० सोहनलाल ने अपना अधिकाश समय सैनिको मे ही क्राति का सदेश पहुँचाने मे लगाया। एक दिन जब वह फोज की एक टुकडी मे क्राति की ज्वाला फूँक रहे थे, तभी एक गद्दार जमादार ने उन्हे पकड-वाने का इरादा किया, और बाद मे अकेले पाकर उनका हाथ

पकड लिया। जमादार ने उनसे पुलिस के पास चलने को कहा। पाठकजी को इस स्वार्थी से ऐसी आशा न थी। कैसी अजीब बात थी कि देश का एक बधु आजादी के लिये लड रहा था और दूसरा उसकी गुलामी के लिये प्रयत्नशील था। पडितजी ने उसे बहुत समझाया, और कहा—"हम दोनो एक ही भारत-माता के पुत्र है। मेरे भाई होकर भी तुम मुझे ऐसे पकडवा दोगे! देखो न, हमारा देश गुलाम है, हम उसी गुलामी को हटाने के लिये लड रहे है।"

लेकिन उस नर-राक्षस पर कोई प्रभाव न पडा। यद्यपि पडितजी के पास ३ पिस्तौले और सैकडो कारतूसे थी, तो भी उन्होने इनका उपयोग न किया। पता नही, उनके मन मे क्या बात आई हो उस समय। सभव है, ऐसे गद्दार और कृतघ्नी बधु को देखकर उनके मन मे वितृष्णा आ गई हो। जो भी हो, वह गिरफ्तार हो गए, और अत मे उन्हे फॉसी दे दी गई। बहुत-से क्रातिकारियो ने तो फासी की सजा को केवल इसलिये वरण किया कि उस समय देश की आजादी के लिये खून की जरूरत थी और यह खून देकर उन्हे शेष देश वासियो के खून मे गर्मी लानी थी।

❀

21

भगवतीचरण

लाहौर मे, रावी के किनारे, बम-परीक्षण करते समय प्रमुख क्रातिकारी भगवतीचरण का शहीद होना क्राति-इतिहास का अत्यत रोमाचक एव करुणा-पूर्ण पृष्ठ है। यह दुर्घटना आज भी उतनी ही रहस्य-पूर्ण बनी हुई है, जितनी कि आज से साढे तीन दशक पूर्व थी, अर्थात् २८ मई, १९३० को।

यह रोमाचक पृष्ठ इतिहास के उस दौर से सबधित है, जब सरदार भगतसिह, राजगुरु आदि पर लाहौर-जेल मे मुकदमा चल रहा था, और क्रातिकारी-शिरोमणि चद्रशेखर आज़ाद ने उन्हे छुडाने की योजना बनाई थी। आज़ाद ने इसके

लिये भगवतीचरण की क्रातिकारिणी पत्नी श्रीमती दुर्गा-देवी को परिवर्तित वेश मे भगतसिह की चाची आदि बना-कर कई बार उनसे विचार-विमर्श करने के लिये जेल भेजा। अतत तय यह हुआ कि अनशन की हालत मे सरदार भगत-सिह जब निकट ही स्थित एक जेल से दूसरी जेल मे भेजे जायँ, तब पुलिस पर बम से आक्रमण करके उन्हे छुडा लिया जाय। उन्हे तुरत किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिये कार की व्यवस्था भी हो गई थी। इसके लिये जेल के पास ही एक मकान भी ले लिया गया था।

जब यह कार्य-क्रम निश्चित हो गया, तब तय हुआ कि नए बनाए गए बमो का परीक्षण भी कर लिया जाय। ऐसा न हो कि वे मौके पर धोखा दे जायँ। शाम को बम-परीक्षण होना था और दिन मे भगवतीचरण अपने दो साथियो—सुखदेवराज और वैशपायन को लेकर रावी के किनारे जगल मे बम-परी-क्षण के लिये गए। उन्होने एक बम हाथ मे उठाया, तो मालूम हुआ कि उसकी कैप ढीली है। उन्होने अपने साथियो को यह बात बताई। यह सुनकर सुखदेवराज परिहास करते हुए बोले—"लगता है, भगवती भाई डर गए, और इसके साथ ही वह उनके हाथ से बम लेने के लिये आगे बढे। बम सुखदेवराज के हाथ मे आ भी न पाया था कि भगवतीचरण के हाथ मे ही दग गया। जोरो का धडाका हुआ। भगवतीचरण सख्त घायल हुए। सुखदेवराज को भी घावो मे बहुत चोट आई।

२१

भगवतीचरण

लाहौर मे, रावी के किनारे, बम-परीक्षण करते समय प्रमुख क्रातिकारी भगवतीचरण का शहीद होना क्राति-इतिहास का अत्यत रोमाचक एव करुणा-पूर्ण पृष्ठ है। यह दुर्घटना आज भी उतनी ही रहस्य-पूर्ण बनी हुई है, जितनी कि आज से साढ़े तीन दशक पूर्व थी, अर्थात् २८ मई, १९३० को।

यह रोमाचक पृष्ठ इतिहास के उस दौर से सबधित है, जब सरदार भगतसिह, राजगुरु आदि पर लाहौर-जेल मे मुकदमा चल रहा था, और क्रातिकारी-शिरोमणि चद्रशेखर आज़ाद ने उन्हे छुडाने की योजना बनाई थी। आज़ाद ने इसके

लिये भगवतीचरण की क्रातिकारिणी पत्नी श्रीमती दुर्गा-देवी को परिवर्तित वेश मे भगतसिह की चाची आदि बना-कर कई बार उनसे विचार-विमर्श करने के लिये जेल भेजा। अतत तय यह हुआ कि अनशन की हालत मे सरदार भगत-सिह जब निकट ही स्थित एक जेल से दूसरी जेल मे भेजे जायँ, तब पुलिस पर बम से आक्रमण करके उन्हे छुडा लिया जाय। उन्हे तुरत किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिये कार की व्यवस्था भी हो गई थी। इसके लिये जेल के पास ही एक मकान भी ले लिया गया था।

जब यह कार्य-क्रम निश्चित हो गया, तब तय हुआ कि नए बनाए गए बमो का परीक्षण भी कर लिया जाय। ऐसा न हो कि वे मौके पर धोखा दे जायें। शाम को बम-परीक्षण होना था और दिन मे भगवतीचरण अपने दो साथियो—सुखदेवराज और वैशपायन को लेकर रावी के किनारे जगल मे बम-परी-क्षण के लिये गए। उन्होने एक बम हाथ मे उठाया, तो मालूम हुआ कि उसकी कैप ढीली है। उन्होने अपने साथियो को यह बात बताई। यह सुनकर सुखदेवराज परिहास करते हुए बोले—"लगता है, भगवती भाई डर गए, और इसके साथ ही वह उनके हाथ से बम लेने के लिये आगे बढे। बम सुखदेवराज के हाथ मे आ भी न पाया था कि भगवतीचरण के हाथ मे ही दग गया। जोरो का धडाका हुआ। भगवतीचरण सख्त घायल हुए। सुखदेवराज को भी पावो मे बहुत चोट आई।

भगवतीचरण को अपने बचने की उम्मीद न थी। वह बोले—"बधुआ, अब मेरी चिता न करो। तुम जाओ, और ऐक्शन आज ही निश्चित समय पर होना चाहिए।" किंतु सुखदेवराज न माने। वह किसी तरह गिरते-पडते नगर मे आए और इस दुघटना की सूचना अपने शेष साथियो को दी। बाद मे यशपाल घटना-स्थल पर पहुँचे। फिर क्या हुआ, भगवतीचरण ने चिकित्स के अभाव मे कब और कैसे दम तोड, यह सब रहस्य के गर्भ मे है। इतना अवश्य ज्ञात है कि उस वीर को सैनिक सलामी देकर रावी नदी मे ही प्रवाहित कर दिया गया। भारत-माता का वह दुलारा और न जाने कितनो की आँखो का तारा यो ही चला गया—अकेला और अजाना। कोई उसे जानता तक नही, सिवा दो-तीन साथियो के।

इसके साथ ही समाप्त हो गई वह योजना, जो भगत सिह को छुडाने के लिये बनी थी। एक प्रिय और प्रमुख साथी के विछोह के शोक मे उस शाम वह योजना स्थगित हो गई। और, दूसरे दिन प्रात दैवयोग से उस मकान के कमरे मे रक्खा एक बम अपने आप फट गया, जो भगतसिह को छुडाने की योजना के अनर्गत जेल के पास ही किराए पर लिया गया था।

भगवतीचरणजी वस्तुत गुजराती नागर ब्राह्मण थे। वह अपने नाम के आगे 'बहुरा' लिखते थे। पजाब मे रहने के

कारण वह 'बोहरा' बन गए। इस परिवतन पर उन्हे कोई आपत्ति भी न थी। पादी उनकी बचपन मे ही हो गई थी, जब वह हाईस्कूल मे पढते थे। बाद मे जब उनका घनिष्ठ सबध क्रातिकारी पार्टी से जुडा और उनके घर मे बडे-बडे क्राति-कारी आने लगे, तब उस वातावरण का प्रभाव उनकी पत्नी दुर्गादेवी पर भी पडा, और वह क्राति के पथ पर बढ चली।

१५ दिसबर, १९२८ को जब लाला लाजपतराय पर मारक प्रहार करनेवाले पुलिस-अधिकारी साडस की लाहौर मे क्रातिकारियो द्वारा हत्या कर दी गई तब वहाँ जोरो की सनसनी फैल गई तथा गिरफ्तारियाँ शुरू हो गई। हत्याकाड के मुख्य नेता आजाद, भगतसिह, राजगुरु आदि को पुलिस तलाश कर रही थी। तभी भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी ने अँगरेज मेम का रूप धारण किया, भगतसिह ने साहब का और राजगुरु ने नौकर का। इस प्रकार तीनो पुलिस की आँखो मे धूल झोककर उनके सामने से रेल द्वारा लाहौर से बाहर चले गए। कहा जाता है, आज़ाद रामनामी ओढकर एक भक्त ब्राह्मण का स्वरूप बनाकर उसी रेल से गए थे, किंतु इसके बारे मे निश्चय से कुछ कह सकना असभव है। इस प्रकार भगतसिह और दुर्गादेवी जब कलकत्ता पहुँचे, तब स्टेशन पर ही भगवतीचरण उनसे मिलने आए थे, जो उस समय वही पजाब मे रह रहे थे। गिरफ्तारी से बचने के लिये भगवती-चरण अपनी पत्नी के इस साहस को देखकर बहुत प्रसन्न हुए

और उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—"दुर्गा, आज मेरी ओर तुम्हारी असली शादी हुई है।"

आजाद के विश्वास-पात्र

बहुत कम लोग यह जानते है कि शुरू मे कुछ समय तक भगवतीचरण अपनी पार्टी मे सदेह की दृष्टि से देखे जाते रहे थे। इसका कारण यह था कि उन्होने अपनी योग्यता और बलिदान-भावना से शीघ्र ही पार्टी मे अपना प्रमुख स्थान बना लिया था, जिससे ईर्ष्या रखनेवाले पजाब के एक नेता ने पार्टीवालो के कान उनके विरुद्ध भर दिए। इसका प्रभाव कुछ समय तक चद्रशेखर आजाद पर भी रहा और एक बार जब उन्हे पार्टी के लिये रुपयो की सख्त जरूरत पडी, तब भगवतीचरण ने उन्हे ३ हजार रुपए देने का प्रस्ताव रक्खा। इस पर आजाद ने कहला भेजा कि वह पुलिसवालो का पैसा नही लेते। इसके बाद वह दिल्ली मे आजाद से मिले। जब आजाद ने स्वय उन्हे देखा और परखा, तब वह आश्वस्त हो गए। अनेक महत्त्व-पूर्ण कार्य वह भगवतीचरण को ही सिपुर्द करने लगे। अत मे उनकी शानदार शहादत ने यह सिद्ध कर दिया कि भगवतीचरण एक निष्ठावान् और बलिदानी क्रातिकारी थे।

❀

२२

भूपेंद्रनाथ दत्त

श्रीभूपेंद्रनाथ दत्त उन्ही स्वामी विवेकानद (नरेंद्रनाथ) के अनुज थे, जिन्होने अपनी दैवी शक्ति और सामर्थ्य के वल पर पद-दलित हिंदू-धर्म और सस्कृति को विदेशो मे इतने ऊँचे आसन पर बिठाया कि शासनकर्ता गौराग महाप्रभुओ को भी उनके समक्ष नत-मस्तक होना पडा था। जिस प्रकार स्वामी विवेकानद ने सदियो से सोए हुए हिंदू-समाज को जाग्रत् कर उसे उसकी महानता, श्रेष्ठता और सामर्थ्य से अवगत कराया था, उसी प्रकार उनके अनुज भूपेंद्रनाथ दत्त ने अरविद घोष तथा अन्य अनेक स्वातत्र्य-योद्धाओ के साथ मिलकर, आज से ५५-५६ वर्ष पूर्व, इस मातृभूमि को विदेशी

बधन से मुक्त कराने की साहस-पूण भूमिका तैयार की, जिसका फल लगभग आधा शताब्दी बाद दिखाई पडा। माता के एक पुत्र ने यदि देश का धार्मिक, सामाजिक एव सास्कृतिक पुन-र्जागरण किया, तो दूसरे ने राजनीति के पुनर्जागरण मे अपना अत्यत महत्त्व-पूर्ण योगदान दिया। इसीलिये जब सन् १९०७ मे भूपेद्रनाथ दत्त सुप्रसिद्ध पत्र 'युगातर' के सपादक के रूप मे, क्रातिकारी लेख लिखने के फल-स्वरूप, राजद्रोह के आरोप मे जेल भेजे गए, तो स्वामी विवेकानद की परम शिष्या भगिनी निवेदिता (आयरलैड की मिस मागरेट नोबल) ने उनकी मा के पास जाकर सात्वना-पूर्ण शब्दो म कहा—"मा, आप रत्न-गर्भा है। एक पुत्र तो भारत को दुनिया के सामने सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करने मे सफल हुआ और दूसरा भारत की मुक्ति के लिये जो अचना की माला बन रही है, उसका प्रथम पुष्प बनकर हॅसते-हॅसते जेल चला गया।"

ओजस्वी पत्रकार

भूपेद्रनाथ दत्त का कर्मशील जीवन मुख्यत सन् १९०६ से प्रारभ हुआ, जब वह 'युगातर' पत्र के सपादक बने। इसके द्वारा उन्होने न केवल भारतीय पत्रकारिता के उच्च-तम मानदडो की स्थापना की, बल्कि अपने जीवन का आदर्श उपस्थित करके भविष्य मे ओजस्वी, निर्भीक एव निष्ठावान् सपादको की एक शृखला का भी निर्माण किया। अपनी उग्र राष्ट्रीयता, निर्भयता और ओजस्विता के कारण शीघ्र ही

'युगातर' बगाल-सहित पूर्वी भारत की जनता का कठ-हार बन गया, उसी प्रकार, जैसे देश के दूसरे भाग मे लोकमान्य तिलक का 'केसरी' था। इन दोना पत्रो ने अपने समय मे राष्ट्रीय जागृति का जो शखनाद फूका, उसे ब्रिटिश सरकार के कान न सह सके तथा उसने इन मपादको पर राजद्रोह के मुकदमे चलवाकर कारावास का दड दिया था।

'युगातर' के बारे मे एक महत्त्व पूण तथ्य उल्लेखनीय है कि "देश का यह सव-प्रथम पत्र केवल ४३० रुपए को पूजी से शुरू किया गया था। इसमे देशबधु चित्तरजनदास क भी तीस रुपए शामिल थे।"

वस्तुत भूपेन दा तथा अन्य युवक क्रातिकारियो ने यह पत्र किसी लाभ कमाने या जीविकोपाजन के लिये नही निकाला था, बल्कि वह उनकी व्यापक क्राति-योजना का एक अभिन्न एव महत्त्व-पूर्ण अग था। इस पत्र के द्वारा वे जनता मे राष्ट्रीय क्राति की भावना जगाते तथा स्वय एक 'युगातर समिति' या 'युगातर गुट' के रूप मे ऐसे कार्य करते थे, जिससे भारत मे ब्रिटिश सत्ता की नीव हिल उठे। इस गुप्त सगठन के प्रेरणा-केद्र अरविद घोष थे तथा भूपेन दा के अतिरिक्त अन्य कार्यकर्ता थे—बरीन, देवव्रत, अविनाश भट्टाचार्य आदि। इस सगठन की अपनी बम-फैक्टरी भी थी। काकोरी-ट्रेन-डकैती से प्राय २० वर्ष पूर्व भूपेन दा तथा अन्य क्रातिकारी देश मे क्राति-सगठन-कार्य के लिये बगाल मे विभिन्न डकैतियाँ डालकर आगामी क्रातिकारियो के लिये मार्ग प्रशस्त कर चुके थे।

इस गुप्त सगठन का सबध महाराष्ट्र मे लोकमान्य तिलक के गुप्त क्रातिकारी दल से था तथा इन लोगो ने बग-भग विरोधी आदोलन के दौरान मे लोकमान्य तिलक को शिवाजी-महोत्सव के बहाने बगाल बुलाया था।

क्रातिकारियो के लिये घोषणा-पत्र

सन् १९०६ मे 'युगातर' प्रकाशित हुआ था। इसके दूसरे अक मे ही भूपेद्रनाथ दत्त ने जो सपादकीय लिखा था, वह क्रातिकारियो के लिये घोषणा-पत्र के समान था। सन् १९०७ मे भूपेद्रनाथ दत्त गिरफ्तार कर लिए गए, और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला। उन्होने अदालत मे अपने मुकदमे की पैरवी मे कुछ करने या कहने से इकार कर दिया। इस प्रकार उन्होने सरकारी नियमो से असहयोग करने की उस नीति का परिचय दिया, जो बाद मे स्वतत्रता-आदोलन का एक प्रमुख अग बनी। जिस समय बगाल के बडे-से-बडे वकील और बैरिस्टर उनका मुकदमा लडने की तैयारी कर रहे थे, उन्होने अदालत मे स्पष्ट घोषणा की—'मैने वही किया, जो अपनी मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य समझा। अदालत जो भी सजा चाहे, मुझे दे सकती है।"

ठीक एक वर्ष बाद यही भावना और अधिक ओजस्वी रूप मे भारत के दूसरे भाग महाराष्ट्र मे गूँजी थी, जब 'केसरी' मे प्रकाशित दो लेखो के लिये लोकमान्य तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा चला था और उन्होने अदालत मे अपना ऐसा ही ऐतिहासिक बयान दिया था।

किंतु सत्तारूढ अँगरेज़ो के न्यायालय मे भारतीयो के प्रति न्याय कैसा ? ओजस्वी एव उत्कट राष्ट्रीय भावनाओ का क्या महत्त्व ? लोकमान्य तिलक को तो ६ वर्ष के काले पानी की सजा मिली थी, परतु भूपेद्रनाथ दत्त को केवल एक वर्ष की कडी कैद की ही सजा मिली। जिस दिन बगाल के इस क्राति-कारी को सजा सुनाई गई, उस दिन सपूर्ण बगाल मे रोष एव आक्रोश की लहर दौड गई और कुछ स्थानो पर तो दगे भा हो गए।

जब भूपेन दा कारावास से लौटे, उस समय तक बगाल मे अधिकाश क्रातिकारी गिरफ्तार कर जेल भेजे जा चुके थे तथा उन्हे विभिन्न काडो मे फँसाकर फासी या अन्य बडी सजाएँ दी जा चुकी थी। ब्रिटिश सरकार के भयकर दमन-चक्र से क्रातिकारी-आदोलन शिथिल हो चला था, यहाँ तक कि अरविद घोष भी अलीपुर बम-केस मे फासे जा चुके थे। यद्यपि उन्हे सजा नही हुई, परतु कारावास-जीवन ने उनकी भाव-धारा बदल दी और वह आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्त हो गए। ऐसी दशा देखकर भूपेन दा अमेरिका चले गए, जहाँ उनकी भेट भगिनी निवेदिता से हुई, जो कुछ समय पूर्व तक भारत के क्रातिकारी आदोलन मे उनकी सहयोगिनी रही थी और युगातर के सपादन - काय मे भी उन्हे सहयोग प्रदान करती रही थी।

विदेश मे क्राति का प्रयास

सन् १९१६ मे भपेद्रनाथ दत्त 'भारतीय बर्लिन कमेटी'

के मत्री हुए और १९१८ तक वहाँ रहे। इस कमटी का उद्देश्य विदेशो मे भारतीय क्राति के लिये वातावरण तैयार करना, विदेशो से अँगरेजो के विरुद्ध सभी सभव सहायता प्राप्न करना तथा विदेशो मे विद्यमान भारतीयो को क्राति के लिये तैयार करना था। इस कमेटी का सबध लाला हर-दयाल की 'गदर-पार्टी' से भी था तथा यह उसको आर्थिक सहायता प्रदान करती थी। कमेटी के मत्री होने के नाते वह कई देशो मे भी गए। लोकमान्य तिलक के आदेश से वह अपने अन्य क्रातिकारी साथियो के साथ मास्को गए तथा वहाँ के विदेश विभाग से कुछ सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया।

इसके बाद वह जमनी गए, जहाँ भारतीय छात्रो की सहायता के लिये 'इडियन न्यूज ऐड इन्फार्मेशन ब्यूरो'-नामक सस्था की स्थापना की। भूपेन दा केनिया आदि कुछ अफ्रीकी देशो मे भी गए थे।

बग-भग आदोलन के समय अँगरेजो ने अपनी नृशस दमन नीति से जो क्राति कुछ समय के लिये दबा दी थी, वह बर्लिन - कमेटी के प्रयासो से पुनर्जीवित हुई तथा अँगरेज-विरोधी और तटस्थ देशो मे भारतीय स्वतत्रता के प्रयासो को बडा बल और समर्थन मिला। विदेशो मे रहनेवाले अनेक भारतीय भी क्राति की भावना लेकर स्वदेश लौटे।

बर्लिन-कमेटी ने एक बार तो योजना बनाई थी कि अड-मान द्वीप पर आक्रमण कर वहाँ विद्यमान सभी राज-

नीतिक बदियो को मुक्त कर उन्हे किन्ही अन्य देशो मे पहुँचा दिया जाय। इस दृष्टि से एक जमन को आवश्यक तैयारी करने के लिये भेजा भी गया था, परतु वह सिगापुर मे पकड लिया गया और दुर्भाग्य से वह योजना जहाँ-की-तहाँ रह गई।

भूपेन दा ने अपने जीवन का गौरव एव स्वाभिमान अत तक बनाए रक्खा। स्वतत्रता के बाद उन्होने अपने स्वातन्त्र्य-प्रयासो का कोई पुरस्कार नही चाहा। उनका दृढ आदशवाद अत तक सुरक्षित रहा। उन्होने जीवन के सुख के लिये कभी परिस्थितियो से समझौता नही किया।



२३

अशफाकउल्लाखाँ

काकोरी-केस के अमर शहीद अशफाकउल्लाखाँ को फाँसी लगने से २ दिन पूव जब उनके वकील उनके दो भाइयो और दो भतीजो के साथ फैजाबाद-जेल मे मिलने गए, तो अतिम बिदा लेते समय स्वाभाविक रूप से दोनो भाई कुछ गमगीन हो गए तथा भतीजे फूट-फूटकर रो उठे। इस पर उस शहीद ने किचित् रोष-पूर्वक कहा था—"वकील साहब, आप इन लोगो को अपने साथ क्यो लाए? यह मौका रोने-धोने का है या खुश होने का। वे सामनेवाली ३ कोठरियाँ आप देखते है न, इनमे तीन भाई बद है—एक ही मा के पेट से जन्मे। इन लोगो ने डेढ सेर राब के लिये झगडा किया था,

और दो आदमियो को मार डाला था। इनको कल फॉसी मिलनेवाली है। यदि ये तीनो भाई, जो अपने पिता के उतने ही लाडले है, केवल डेढ सेर राब के लिये फासी पर चढ सकते है, तो मेरे ऊपर तो भारत की सत्ता विदेशी अँगरेजो के हाथ से छीन लेने की साजिश का मुकद्दमा चल रहा है। क्या यह मुकद्दमा अपनी जान की बाजी लगाने के लिये काफी न था?"

इसके बाद वकील श्रीहजेला ने पूछा—"आपकी कोई अंतिम इच्छा है?" उन्होने चट से कहा—"हॉ, है। क्या आप पूरी करेगे? देखिएगा, परसो मै किस शान से फॉसी पर चढता हूँ।"

यह था उस शहीद का चरित्र और यही थी उसकी उत्सर्ग-भावना, जो भारत के बलिदानी इतिहास का एक गौरवपूर्ण अध्याय बन गई है। अशफाक को जब-जब फासी से छुडा लेने या जेल से भगा देने की बात कही गई, तब-तब उन्होने यही कहा कि "भाई एक मुसलमान को भी तो शहीद होने दो। हिंदुओ मे तो बहुत-से है।" और अशफाक ने अपने जीवन के उत्सर्ग से यह सिद्ध कर दिया कि देश के लिये उनका बलिदान किसी भी हिंदू बलिदानी से कम महत्त्व-पूर्ण नही। साथ ही उन्होने यह भी सिद्ध कर दिया कि हिंदू और मुसलमान, दोनो ही भारतमाता के पुत्र है और दोनो पर माता की परतन्त्रता की बेडियॉ काटने का दायित्व समान रूप से है।

इतना ही नही, जेल मे एक बार उन्होने यह भी प्रयास किया कि काकोरी-षड्यत्र का सारा दायित्व वह अपने सिर ले ले और किसी प्रकार अपने नेता पडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' को बचा ले। उन्होने कहा था—"पार्टी को 'बिस्मिल'-जैसे नेता की सेवाओ की अधिक आवश्यकता है। मै तो सिफ एक सिपाही हूँ।" लेकिन उनका यह प्रयास पडितजी को फासी स न बचा सका।

शहीद ही नही, शायर भी !

अशफाक उर्दू के अच्छे शायर भी थे। लेकिन उनकी शायरी को देखकर कभी-कभी यह पता लगा पाना भी कठिन होता है कि वह उर्दू के शायर थे या हिंदी के कवि। यही एकता और एकात्मकता उनके बलिदानी जीवन की विशेषता थी। उनका काव्य उनके बलिदानी जीवन की ही अभिव्यक्ति थी, इसीलिये वह आज भी सशक्त ओर प्रेरक है। जिस काव्य को एक शहीद ने अपने जिगर के खून से लिखा हो, क्या वह देशवासियो को देश के लिये खून देने की प्रेरणा न देगा ?

उनकी इस प्रिय गजल की बानगी देखिए—

ऐ मातृभूमि, तेरी सेवा किया करूँगा,
मुश्किल हजार आवे हरगिज न म डरूगा !
निश्चय यह कर चुका हूँ, इसमे नही है सदह,
तेरे लिये जिऊँगा, तेरे लिये मरूँगा।

फासी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी ,
बेडी बजा-बजाकर तेरा भजन करूँगा।
फट्टा यह मूज का फिर फूलो की सेज होगी,
इसको बिछाके तेरी मै गोद मे पड़ूगा।
चक्की की हो मशक्कत या रामबास-कोल्हू ,
सब कुछ मै तेरी खातिर माता किया करूँगा।

शहीद अशफाक का जैसा जीवन था, अत करण की जैसी भावनाएँ थी, वही सब तो उनके काव्य मे अभिव्यक्त हुई। काव्य और कर्म का ऐसा सुदर सामजस्य और अन्यान्याश्रय सबध अन्यत्र कठिनाई से मिलेगा। जैसा कि उन्होने कहा है—

वतन हमेशा रहे शादकाम और आजाद,
हमारा क्या है, गर हम रहे, रहे, न रहे !

० ० ०

कुछ आरजू नही है, है आरजू तो यह ,
रख दे कोई जरा-सी खाके वतन कफन मे !

० ० ०

मौत को एक बार जब आना है, तो डरना क्या है !
हम सदा खेल ही समझा किए, मरना क्या है !

काश, स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद देश के कवि, शायर अपने समक्ष ऐसे ही काव्यादर्श और देशवासी ऐसे ही जीवनादर्श रखते। यदि ऐसा हुआ होता, तो हमारा राष्ट्रीय जीवन आज कितना सशक्त और जाग्रत् होता !

❀

२४

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

स्वतत्रता प्राप्त हुए इतने वष वीत गए, परतु आज भी हमारे देश के विभिन्न दलो और वर्गा के राजनीतिक एव साप्र-दायिक स्वार्थ के कारण हमारी राष्ट्रीय एकता पुन सकट मे पड रही है। इसी प्रकार स्वतत्रता-प्राप्ति के पूव सत्तारूढ अँग-रेजो की नीति—"विभाजन करो और शासन करो" की नीति के कारण हमारी राष्ट्रीय एकता के कदम डगमगा रहे थे। हिदुओ और मुसलमानो मे निरतर तनाव बनाए रखने का प्रयास किया जाता था। यही कारण है कि आए दिन विभिन्न स्थानो पर साप्रदायिक दगे भी होते रहते थे।

सबसे अधिक खेद-जनक बात तो यह थी कि अँगरेजो के

विरुद्ध सघर्ष मे भी उक्त राष्ट्रीय विभेद परिलक्षित होता था। इस दृष्टि से अशफाकउल्लाखा और पडित रामप्रसाद 'बिस्मिल' की मैत्री और बलिदान-भावना शायद ऐसी पहली घटना थी, जिसने भारत माता के दो पुत्रो—हिंदू और मुसलमान—को एक साथ मिलकर अँगरेजो के विरुद्ध लडने के लिये प्रेरित किया।

बिस्मिल ने सध्या-पूजन और स्वाध्याय करनेवाले कट्टर आयसमाजी होने के बावजूद, अशफाकउल्लाखाँ को अपना परम मित्र और अभिन्न साथी माना और उन्हे स्वतत्रता की बलि-वेदी पर बलिदान होने के लिये प्रेरित किया। 'बिस्मिल' और अशफाकउल्ला मे इतनी अभिन्नता थी कि दोनो एक साथ जिए और एक साथ मरे। काकोरी-काड के सिलसिले मे १९ दिसबर, १९२७ के दिन दोनो ने फाँसी के फदे का वरण किया। उस समय अशफाक भारतीय स्वतत्रता के लिये शहीद होनेवाले प्रथम मुसलमान थे।

दोनो क्रातिकारियो मे कितनी एकता और एकात्मकता थी, इस सबध मे एक घटना का उल्लेख अप्रासगिक न होगा। एक बार अशफाकउल्लाखाँ को हृदयकप का दौरा हुआ। उस दौरे मे वह राम की रट लगाने लगे। उस समय उपस्थित उनके नातेदारो और रिश्तेदारो को बडा आश्चय हुआ, और कुछ लोगो ने उनको बुरा-भला भी कहा कि मुसलमान होकर 'राम-राम' कह रहे है। उसी दौरान मे एक मित्र आए। उन्होने 'राम-राम' का रहस्य समझकर तुरत प० रामप्रसाद 'बिस्मिल'

को बुलवाया। बिस्मिल के आने पर अशफाक को शाति मिली और उपस्थित लोगो ने 'राम-राम' का रहस्य जाना।

मुख उज्ज्वल कर दिया

फाँसी से केवल तीन दिन पूव लिखे गए आत्म-चरित्र मे 'बिस्मिल' ने अपने प्रिय साथी के बारे मे लिखा है—

"तुमने ससार मे मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। आज भारत के इतिहास मे इस घटना का भी समावेश हो गया कि अशफाकउल्ला ने क्रातिकारी-आदोलन मे योग दिया अदालत मे तुमको मेरा महकारी (लेफ्टिनेट) ठहराया गया, और जज ने हमारे मुकद्दमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले मे भी फाँसी की जयमाल पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हे यह समझकर सतोष करना होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-मपत्ति को देश-सेवा की भेट कर दिया, जिसने अपना तन मन-धन मवस्व मातृ-सेवा मे अपण करके अपना अतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेट चढा दिया।"

देश-भक्ति और हिंदी

'बिस्मिल' को देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और हिंदी कितनी प्रिय थी, इसका परिचय अशफाकउल्ला के प्रति व्यक्त किए गए उनके इन उद्गारो से मिलता है—

"तुम सदैव हिंदू-मुस्लिम-एकता के पक्षपाती रहे। तुम एक

सच्चे मुसलमान और सच्चे देश-भक्त थे। यदि जीवन मे तुम्हारी कोई आकाक्षा थी, तो यही कि मुसलमानो को खुदा अक्ल दे कि वे हिंदुओ के साथ मिलकर हिंदोस्तान की भलाई करते रहे। जब मै कोई लेख या पुस्तक लिखता, तो तुम सदैव यह अनुरोध करते थे कि उर्दू मे भी क्यो नही लिखते, जो मुसलमान भी पढ सके। ओर फिर तुमने स्वदेश-भक्ति के भावो को भली भाति समझने के लिये ही हिंदी का अच्छा अध्ययन किया।

जीवन-चरित्र

क्रातिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' का जन्म शाहजहाँपुर-जिले के एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार मे हुआ था। उनके पिता श्रीमुरलीधर स्वभाव के सरल और उदार तथा आचार-विचार मे कट्टर आयसमाजी थे। उनके इन गुणो का राम-प्रसादजी पर पूरा-पूरा प्रभाव पडा था।

बालक रामप्रसाद की प्रारभिक शिक्षा शाहजहाँपुर के ही स्कूल मे आरभ हुई। देववाणी सस्कृत के प्रति उनका बडा लगाव था। कितने ही सस्कृत-श्लोक व मत्र उन्हे कठस्थ हो गए थे। इसके अतिरिक्त साहसिक खेलो तथा घुडसवारी मे उन्हे बडा आनद प्राप्त होता था।

उन दिनो प्रथम महायुद्ध चल रहा था। भारतीय जनता पर अँगरेज शासको के अत्याचार बढते जा रहे थे। विद्यार्थी रामप्रसाद इसे बर्दाश्त न कर पाए। उनके सरल, शात हृदय मे विद्रोह की ज्वाला धधक उठी। अपने छात्र-जीवन मे ही उन्होंने

को बुलवाया। बिस्मिल के आने पर अशफाक को शाति मिली और उपस्थित लोगो ने 'राम-राम' का रहस्य जाना।

मुख उज्ज्वल कर दिया

फाँसी से केवल तीन दिन पूव लिखे गए आत्म-चरित्र मे 'बिस्मिल' ने अपने प्रिय साथी के बारे मे लिखा है—

"तुमने ससार मे मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। आज भारत के इतिहास मे इस घटना का भी समावेश हो गया कि अशफाकउल्ला ने क्रातिकारी-आदोलन मे योग दिया अदालत मे तुमको मेरा महकारी (लेफ्टिनेट) ठहराया गया, और जज ने हमारे मुकद्दमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले मे भी फाँसी की जयमाल पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हे यह समझकर सतोष करना होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-मपत्ति को देश-सेवा की भेट कर दिया, जिसने अपना तन मन-धन मवस्व मातृ-सेवा मे अपण करके अपना अतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेट चढा दिया।"

देश-भक्ति और हिदी

'बिस्मिल' को देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और हिदी कितनी प्रिय थी, इसका परिचय अशफाकउल्ला के प्रति व्यक्त किए गए उनके इन उद्‌गारो से मिलता है—

"तुम सदैव हिदू-मुस्लिम-एकता के पक्षपाती रहे। तुम एक

सच्चे मुसलमान और सच्चे देश-भक्त थे। यदि जीवन मे तुम्हारी कोई आकाक्षा थी, तो यही कि मुसलमानो को खुदा अक्ल दे कि वे हिंदुओ के साथ मिलकर हिंदोस्तान की भलाई करते रहे। जब मै कोई लेख या पुस्तक लिखता, तो तुम सदैव यह अनुरोध करते थे कि उर्दू मे भी क्यो नही लिखते, जो मुसलमान भी पढ सके। ओर फिर तुमने स्वदेश-भक्ति के भावो को भली भाति समझने के लिये ही हिंदी का अच्छा अध्ययन किया।

जीवन-चरित्र

क्रातिकारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' का जन्म शाहजहाँपुर-जिले के एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार मे हुआ था। उनके पिता श्रीमुरलीधर स्वभाव के सरल और उदार तथा आचार-विचार मे कट्टर आयसमाजी थे। उनके इन गुणो का राम-प्रसादजी पर पूरा-पूरा प्रभाव पडा था।

बालक रामप्रसाद की प्रारभिक शिक्षा शाहजहाँपुर के ही स्कूल मे आरभ हुई। देववाणी सस्कृत के प्रति उनका बडा लगाव था। कितने ही सस्कृत-श्लोक व मत्र उन्हे कठस्थ हो गए थे। इसके अतिरिक्त साहसिक खेलो तथा घुडसवारी मे उन्हे बडा आनद प्राप्त होता था।

उन दिनो प्रथम महायुद्ध चल रहा था। भारतीय जनता पर अँगरेज शासको के अत्याचार बढते जा रहे थे। विद्यार्थी रामप्रसाद इसे बर्दाश्त न कर पाए। उनेके सरल, शात हृदय मे विद्रोह की ज्वाला धधक उठी। अपने छात्र-जीवन मे ही उन्होने

क्रातिकारी कामो मे भाग लेना आरभ कर दिया। जैसे-तैसे करके उन्होने नवी कक्षा पास की, परतु फिर उनका मन न लगा। उनका मन तो भारत मा को बधन-मुक्त कराने के लिये तडप रहा था। उन्होने पढाई छोड दी। और, अट्ठारह वर्ष की अल्पायु मे ही उनका क्रातिकारी जीवन आरभ हुआ।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने असाधारण सगठन-शक्ति, सूझ-बूझ, त्याग, दृढता आदि गुणो के कारण शीघ्र ही देश की क्रातिकारी पार्टी मे अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान बना लिया था। काकोरी-ट्रेन-डकैती-योजना का नेतृत्व आपको दिया जाना आपकी असाधारण योग्यता और कुशलता का ही द्योतक है। इस योजना मे भाग लेनेवालो मे अमर शहीद चद्रशेखर आजाद-जैसे महारथी भी थे।

क्रातिकारी दल को विदेशो से शस्त्र मँगाने के लिये धन की आवश्यकता थी। जब क्रातिकारियो को धन जुटाने का कोई प्रभावी उपाय न सूझा, तो उन्होने प० रामप्रसाद 'बिस्मिल' के नेतृत्व मे काकोरी के पास मेल ट्रेन का खजाना लूटा। इस घटना के बाद पहले तो सब फरार हो गए, परतु धीरे-धीरे चद्रशेखर आजाद को छोडकर शेष सभी पकड लिए गए।

जेल मे 'बिस्मिल' को कम प्रलोभन नही दिए गए। उनसे अधिकारियो ने कहा कि "यदि वह अपना बगाल से सबध बताते हुए बोलशेविको के बारे मे बयान दे दे, तो उन्हे फाँसी न होगी। थोडी-सी सजा देकर इँगलैड भेज दिया जायगा और साथ ही सरकार से १५ हजार रुपए पुरस्कार-स्वरूप भी दिला

दिए जायँगे।" परतु उन्होने इस प्रलोभन के बजाय फासी का फदा चूमना अधिक श्रेयस्कर समझा।

'बिस्मिल' और अशफाक, दोनो शायर थे। परतु उनकी शायरी किसी रसिक हृदय से नि सृत-मात्र रसमय भावना न थी, बल्कि उस जीवन-दीप की प्रकाशमय लौ थी, जो न-जाने कितने निष्प्राण जीवन-दीपो को प्रज्वलित करने की क्षमता रखती थी।

गोरखपुर मे जब उन पर तथा उनके साथियो पर काकोरी-काड के सिलसिले मे मुकद्दमा चल रहा था, वह जानते थे कि अत मे सजा फॉसी की ही सुनाई जायगी, लेकिन इसकी उन्हे चिता न थी। जब वह अपने साथियो के साथ कचहरी लाए जाते, तो सभी बडी अल्हडता के साथ यह गीत गाते, झूमते हुए जाते थे—

भारत न अब रहेगा, हरगिज गुलामखाना,
आजाद होगा, होगा, आया ह वह जमाना।
हम भेड और बकरी, बनकर न रह सकेंगे,
कर देंगे जालिमो का, सब बद जुल्म ढाना।
अब जेल की यहा पर, परवाह ही किस ह?
इक खेल हो रहा ह, फासी पर झूल जाना।

२५

राजेद्र लाहिडी

राजेद्र लाहिडी भारतीय चमन मे पूर्ण यौवन के पराग-से महकते हुए उन चार सुदरतम जीवन-पुष्पो मे से एक थे, जो काकोरी-केस के शहीद के रूप मे भारत माता के चरणो मे हँसते-हँसते चढ गए। वैसे तो ये चारो पुष्प एक-से-एक सुदर और सुगधित थे—कैसे कहा जाय कि माता के चरणो की शोभा किसने कितनी अधिक बढाई। हाँ, राजेद्र लाहिडी का जीवन-पुष्प इस विशेष श्रेय का अधिकारी अवश्य बन सकता है कि वह साथियो से दो दिन पूव ही अपने आराध्य को समर्पित हो गया। लेकिन ऐसा क्यो हुआ, यह क्रातिकारी-इतिहास का एक रहस्य ही है।

वस्तुत काकोरी-ट्रेन-डकैती-केस के सिलसिले मे ४ क्राति-कारियो—प० रामप्रसाद 'बिस्मिल,' अशफाकउल्लाखा, रोशन-सिह और राजेद्र लाहिडी— को फासी की सजा दी गई थी और इसकी तारीख १९ दिसबर, १९२७ निश्चित की गई। इस केस मे उत्तर-भारत—विशेषकर उत्तर प्रदेश—के अधिकाश प्रमुख क्रातिकारी नेता शामिल हुए थे। चद्रशेखर आजाद को छोडकर शेष सभी देर-सबेर गिरफ्तार कर लिए गए। आजाद अपनी बुद्धिमत्ता और कुशलता के कारण गिरफ्तार न किए जा सके, और वे अबाध गति से अपनी पार्टी का काम करते रहे तथा पुलिस की आँखो मे धूल झोकते रहे।

जब काकोरी-केस के इन नेताओ को फाँसी की सजा हो गई, तो आजाद ने इनमे से दो-एक को जेल से छुडान का प्रयास भी किया।

चूकि चारो व्यक्ति अलग-अलग जेलो मे—बिस्मिल गोरख-पुर मे, अशफाकउल्लाखाँ फैज़ाबाद मे, रोशनसिह इलाहाबाद म और राजेद्र लाहिडी गोडा मे—थे, और जेल के बाहर क्राति-कारी कायकर्ता कम थे, अतएव उन सबको छुडाने की योजना भी नही बनाई जा सकती थी। इसी कारण पहले राजेद्र लाहिडी को ही छुडाने का काय-क्रम बना। इसके लिये आजाद ने मनमोहन गुप्त-नामक क्रातिकारी युवक को गोडा भेजा और स्वय भी वहाँ गए। चूकि आज़ाद के खिलाफ भी इसी केस मे वारट था तथा पुलिस के एकाध व्यक्ति उन्हे पहचानते भी थे, इसलिये वह स्वय तो जेल तक नही गए, लेकिन श्रीगुप्त

२५

राजेद्र लाहिडी

राजेद्र लाहिडी भारतीय चमन मे पूर्ण यौवन के पराग-से महकते हुए उन चार सुदरतम जीवन-पुष्पो मे से एक थे, जो काकोरी-केस के शहीद के रूप मे भारत माता के चरणो मे हँसते-हँसते चढ गए। वैसे तो ये चारो पुष्प एक-से-एक सुदर और सुगधित थे—कैसे कहा जाय कि माता के चरणो की शोभा किसने कितनी अधिक बढाई। हाँ, राजेद्र लाहिडी का जीवन-पुष्प इस विशेष श्रेय का अधिकारी अवश्य बन सकता है कि वह साथियो से दो दिन पूव ही अपने आराध्य को समर्पित हो गया। लेकिन ऐसा क्यो हुआ, यह क्रातिकारी-इतिहास का एक रहस्य ही है।

वस्तुत काकोरी-ट्रेन-डकैती-केस के सिलसिले मे ४ क्राति-कारियो—प० रामप्रसाद 'बिस्मिल,' अशफाकउल्लाखॉ, रोशन-सिह और राजेद्र लाहिडी— को फॉसी की सजा दी गई थी और इसकी तारोख १९ दिसबर, १९२७ निश्चित की गई। इस केस मे उत्तर-भारत—विशेषकर उत्तर प्रदेश—के अधिकाश प्रमुख क्रातिकारी नेता शामिल हुए थे। चद्रशेखर आजाद को छोडकर शेष सभी देर-सबेर गिरफ्तार कर लिए गए। आजाद अपनी बुद्धिमत्ता और कुशलता के कारण गिरफ्तार न किए जा सके, और वे अबाध गति से अपनी पार्टी का काम करते रहे तथा पुलिस की आखो मे धूल झोकते रहे।

जब काकोरी-केस के इन नेताओ को फासी की सजा हो गई, तो आजाद ने इनमे से दो-एक को जेल से छुडान का प्रयास भी किया।

चूकि चारो व्यक्ति अलग-अलग जेलो मे—बिस्मिल गोरख-पुर मे, अशफाकउल्लाखॉ फैजाबाद मे, रोशनसिह इलाहाबाद मे ओर राजेद्र लाहिडी गोडा मे—थे, और जेल के बाहर क्राति-कारी कायकर्ता कम थे, अतएव उन सबको छुडाने की योजना भी नही बनाई जा सकती थी। इसी कारण पहले राजेद्र लाहिडी को ही छुडाने का कार्य-क्रम बना। इसके लिये आजाद ने मनमोहन गुप्त-नामक क्रातिकारी युवक को गोडा भेजा और स्वय भी वहॉ गए। चूकि आजाद के खिलाफ भी इसी केस मे वारट था तथा पुलिस के एकाध व्यक्ति उन्हे पहचानते भी थे, इसलिये वह स्वय तो जेल तक नही गए, लेकिन श्रीगुप्त

को सारी स्थिति का पता लगाने के लिये भेजा। उस दिन १७ दिसबर १९२७ थी—फाँसी मे केवल दो दिन शेष थे। अनुमान था कि उस दिन या दूसरे दिन यह योजना कार्यान्वित हो जायगी, लेकिन श्रीगुप्त जब जेल के फाटक पर पहुँचे, उन्होने कुछ भीड-भाड देखी। पूछने पर पता चला कि राजेद्र लाहिडी को सुबह ही फाँसी दी जा चुकी है। सुनकर उन्होने अपना सिर पकड लिया। पहुँचने से पहले ही सारा खल खत्म हो चुका था! जब यह सूचना आजाद को मिली, तो वह वज्रहृदय भी अपने प्रिय साथी के बिछोह पर रो उठा। विशेषकर इस-लिये कि "ऊधो, मन की मन माहि रही।" और, आजाद तो अपने उस शहीद साथी की शव-यात्रा मे भी शामिल न हो सके! कैसी मजबूरियाँ होती है देश के लिये जीनेवाले और बलिदान होनेवाले देश-भक्तो की। मनमोहनजी अवश्य राजेद्र लाहिडी की अत्येष्टि क्रिया के समय शामिल हुए थे। नगर के कुछ इने-गिने लोग भी थे। जेल के पास ही एक घाट पर उनका दाह-सस्कार किया गया। कई वर्षो बाद जेल के पीछे—जहाँ से फाँसी का फदा आज भी दिखाई पडता है—एक कच्ची-सी समाधि बना दी गई।

फाँसी की इस घटना के ३७ वर्ष बाद इन पक्तियो का लेखक जब श्रीमनमोहन गुप्त तथा काकोरी-केस के क्रातिकारी सवश्री शचीद्रनाथ बखशी, मन्मथनाथ गुप्त ओर रामकृष्ण खत्री के साथ उस अमर शहीद की समाधि पर अपने श्रद्धा के दो सुमन चढाने गया, तो उस समाधि को ढूढ पाना भी

कठिन दिखाई पडा । अत मे एक चरवाहे ने जेल की पिछली दीवार के पास स्थित एक छोटी-सी उपेक्षित समाधि की ओर इगित किया और इतना ही बता सका कि यह एक हिंदू की समाधि है, जिसे इस जेल मे फासी मिली थी । हृदय सहसा मानने के लिये तैयार न हुआ कि स्वतत्रता-प्राप्ति के १७ वष बाद भी राष्ट्र के किसी प्रमुख शहीद की समाधि इस प्रकार उपेक्षित रह सकती है, जिसका भी खून आज की इस स्वतत्रता को लान मे लगा था । खैर, हम लोगो ने अमर शहीद की उस समाधि पर श्रद्धा के सुमन चढाए, क्योकि सच्चे, श्रद्धालु हृदय मे इस बात से मतलब नही कि उसके आराध्यदेव की मूर्ति व मदिर कितना है । फिर भी बेचारा भावुक हृदय यह सोचकर रो पडा कि किसी शहीद ने अपने देश-वासियो से अपने बलिदान के बदले यह न्यूनतम अपेक्षा की थी—

शहीदो की चिताओ पर लगेगे हर बरस मेले,
वतन पर मरनेवालो का यही बाकी निशॉ होगा ।

लेकिन वाह री विडबना, इतने बडे स्वतत्र देश ने स्वतत्रता के लिये मरमिटनेवालो की एक मामूली सी अपेक्षा भी पूर्ण नही की । अपने राष्ट्रीय बलिदानो और बलिदानियो को भुला देनेवाला देश क्या वास्तव मे जाग्रत् और शक्ति-सपन्न कहा जा सकता है ?

बलिदान व्यर्थ न जाय

राजेद्र लाहिडी को फासी उस समय हुई, जब वह २६ वर्ष

के अपने पूर्ण यौवनकाल मे थे, और काशी - विश्वविद्यालय मे एम्० ए० के छात्र थे। वह बनारस मे क्रातिकारी दल का काम देखते थे। दक्षिणेश्वर बम-केस मे ही उन्हे प्रथम बार गिरफ्तार किया गया था। बाद मे उत्तर-प्रदेश-पुलिस ने इन्हे काकोरी-केस मे भी फँसाया। फाँसी से ३ दिन पूव लिखे गए इस पत्र मे उस महान् शहीद का सपूर्ण जीवन-दशन मुखरित हो उठा है—

"आप लोगो ने हमारी प्राण-रक्षा हमारी मृत्यु व्यथ न जायगी।"

अब आज यह बात हमारे और आपके चितन की है कि कड़ी लाहिडी-जैसे शहीदो का बलिदान व्यर्थ तो नही जा रहा ? जहाँ शहीद के कतव्य की इतिश्री होती है, वहाँ देश-वासियो के कर्तव्य का प्रारम्भ होता है।



२६

चद्रशेखर आज़ाद

स्वर्गीय डॉ० पणिक्कर जब श्रीनगर-स्थित कश्मीर-विश्व-विद्यालय के उपकुलपति थे, तब मुझ उनसे एक बार मिलने का सयोग प्राप्त हुआ था। बातचीत के दौरान जब मैंने उनसे क्रातिकारियो की चर्चा की तथा कुछ तत्सबधी साहित्य भेट किया, तब उन्होने क्रातिकारी - शिरोमणि चद्रशेखर आज़ाद तथा उनके कुछ साथियो के चित्र देखकर अँगरेज़ी मे कहा था—"लेकिन ये लोग डाकू थे।" तभी मुझे यह ज्ञात हुआ कि किसी पुस्तक को पढते समय जब छात्र को उसमे उल्लि-खित 'क्रातिकारी' शब्द का अर्थ समझ मे नही आया और उसने अपने अध्यापक से उसका अथ पछा, तो अध्यापक

महोदय ने क्रातिकारी का अर्थ—'हिसा करनेवाला', 'लूट-पाट करनेवाला' आदि बताया था ।

सभव है, ये घटनाएँ किसी को कोई असाधारण अथवा विशेष महत्त्व-पूण न लगे, किंतु यदि इन पर गभीरता-पूर्वक विचार किया जाय, तो ये साधारण-सी घटनाएँ ही हमारे राष्ट्र-जीवन की एक विचित्र विडबना तथा अत्यत दुर्भाग्य-पूर्ण स्थिति की ओर सकेत करती है। कैसी विचित्र बात है कि जिन महामानवो ने अपना जीवन-सर्वस्व राष्ट्र को अर्पित कर, अपने शरीर को तिल-तिल गलाकर देश की आजादी के लिये अपने प्राण होम दिए, वे ही क्रातिकारी आज, देश के आजाद होने पर, कुछ पूर्वाग्रही व्यक्तियो द्वारा लुटेरे ओर हिसक के रूप मे जाने जाते है !

दुर्भाग्य से आजादी के बाद हमने इन शहीदो और बलि-दानियो का बिल्कुल भुला दिया और उसके साथ ही भुला दिया उनके कठिनतम विपत्तियो से जूझनेवाले कार्यो और देश की आजादी के लिये प्राणो को उत्सर्ग करनेवाले जीवन-दशन को । शायद हमने कभी भी यह न सोचा था कि आजादी मिलने के बाद उसकी रक्षा के लिये त्यागो, सघर्ष आर बलिदान की आवश्यकता पडती है, जिसके लिये देश-वासियो के समक्ष उस प्रकार के आदश सदैव रहने चाहिए। ऐसा न होने से ही आज राष्ट्र की जो दशा हुई है, सर्वविदित है ।

इन क्रातिकारियो के सम्मुख सिर्फ बलिदान का आदश ही न था, बल्कि समाज को सुव्यवस्थित और सस्कार-सपन्न

बनाने के गुण भी विद्यमान थे। ऐसा ही महान् जीवन था हिदोस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी (प्रमुख क्रातिकारी दल) के प्रधान सेनापति क्रातिकारी-शिरोमणि चद्रशेखर आजाद का।

मौत और जिदगी दोनो शानदार

२७ फरवरी, १९३१ को, इलाहाबाद के एक पार्क मे, अकेले सशस्त्र पुलिस-टुकडी से लडते हुए आजाद ने जो शानदार मौत पाई, उससे शायद एक बार जिदगी भी शरमा जाय। लेकिन यह अब भी तय करना कठिन है कि उनकी जिदगी ज्यादा शानदार थी या मौत। इसीलिये उनकी महत्ता का आकलन केवल उनकी शानदार शहादत से ही नही किया जा सकता, बल्कि उनकी असाधारण सगठन-कुशलता, नेतृत्व की क्षमता और सघर्ष-प्रियता को भी ध्यान मे रखना होगा, जिसके बल पर उन्होने सिर पर कफन बाँधकर चलनेवाले आजादी के मतवालो की एक विशाल सेना खडी कर दी थी, और उससे ब्रिटिश सरकार को भी नाको-चने चबवा दिए थे।

केवल एक चिता

आजाद का जन्म घोर विपन्नता के बीच हुआ था। उनके माता-पिता बहुत निर्धन थे। ऐसे कितने ही अवसर आए, जब दोनो को दोनो समय पेट भर भोजन और तन ढाँकने के

लिये आवश्यक वस्त्र भी मिलना कठिन था। आजाद इस स्थिति से अवगत थे। पार्टी के हजारो रुपए उनके पास रहते थे, किंतु क्या मजाल कि उसमे से एक पैसा भी इधर-से-उधर हो जाय। बल्कि एक बार कुछ लोगो ने सहायतार्थ कुछ दिया भी, तो उसे भी उन्होने पार्टी मे लगा दिया। जब साथियो ने पूछा, तब इन्होने यही कहा—"अपने माता-पिता के जीवन की अपेक्षा पार्टी का अस्तित्व अधिक महत्त्व-पूर्ण है। अतएव पार्टी की अस्तित्व-रक्षा के लिये उसे ही पहले धन चाहिए।"

आजाद एक ऐसे नेता थे, जो प्रत्येक सकट के समय खुद आगे रहते थे। यद्यपि उनके साथी उनका जीवन सर्वाधिक महत्त्व-पूण मानते थे और इसीलिये यथासभव अनेक छोटे-छोटे सघर्षो मे उनका भेजना उचित न समझते थे, तथापि आजाद सदैव आगे रहते थे, चाहे काम छोटा हो या बडा। जब उनके साथी उन्हे किसी ऐक्शन मे न ले जाते, तो उनका 'मूड' गडबड हो जाता था।

प्रचार से कोसो दूर

आजाद को यह चिता न थी कि इतिहास मे उनका नाम आए या उन्हे कोई बडी ख्याति मिले। वह सच्चे अर्थो मे निष्काम कर्मयोग के अनुयायी थे। एक बार उनके कुछ अन्यतम साथियो, यहाँ तक कि भगतसिह ने पूछा—"पडित-जी, इतना तो बता दीजिए कि आपका घर कहाँ है और

वहाँ कौन-कौन है, ताकि भविष्य मे हम उनकी आवश्यकता पडने पर सहायता कर सके तथा देशवासियो को एक शहीद का ठीक से परिचय मिल सके । इस पर आज़ाद बहुत बिगड पडे थे । उन्होने साफ कह दिया था—"इतिहास मे मुझे अपना नाम नही लिखवाना है और न परिवारवालो को किसी की सहायता चाहिए ।" साथ ही उन्होने चेतावनी दी थी कि ऐसी बात फिर कभी उनके सामने न कही जाय ।

इसके साथ ही आजाद चरित्र के मामले मे पूणत स्वच्छ एव निष्कलक थे । एकाध बार लोगो ने उनकी परीक्षा भी ली, जिसमे वह खरे उतरे । पहले वह स्त्रियो के पार्टी मे प्रवेश के पक्ष मे न थे, कितु, बाद मे 'साथियो के आग्रह पर' स्वीकार कर लिया था । वह कितनी ही लडकियो को शस्त्रास्त्र चलाने की शिक्षा भी देते थे, लेकिन क्या मजाल कि कोई अवाछित भावना मन मे आ जाय । यही कारण है कि एक बार उन्होने अपने एक साथी को गोली मारने का आदेश दे दिया था, क्योकि उसका पार्टी की एक कायकर्त्री से निजी सबध स्थापित हो गया था ।

उनकी मान्यता थी कि जब तक क्रातिकारी के पास भरी पिस्तौल मौजूद है, मजाल नही कि पुलिस उसे जिदा गिरफ्तार कर सके । इसीलिये वह भगतसिह के असेबली मे बम फेककर पकडे जाने के विरुद्ध थे । फिर भी साथियो की राय उन्हे माननी पडी । लेकिन उन्होने अपनी मान्यता खूब निबाही । जिदा तो क्या, पुलिस को उन्हे मुर्दा भी छूने का

साहस न हो पा रहा था। जब अल्फ्रेड पार्क मे पुलिस से सघर्ष करते हुए उनका शरीर गोली से छलनी होकर गिर पडा, तब भी पुलिस को तुरत उनके पास आने का साहस न हो पाया था। पुलिस - अधिकारी भी उनकी असाधारण वीरता पर मुग्ध हो गया था।

वैचारिक नेतृत्व भी

आजाद का उद्देश्य केवल ब्रिटिश सत्ता से सघर्ष करने तक ही सीमित न था, बल्कि उनके सामने एक ऐसे समाज का चित्र भी स्पष्ट था, जो वह स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद बनाना चाहते थे। आज जिस समाजवाद को एक नवीन जीवन-दशन या समाज-पद्धति मानकर उसका इतना ढोल पीटा जा रहा है, उसे आज से ४ दशक पूर्व आजाद और उनके साथियो ने अपने पार्टी का उद्देश्य स्वीकार किया था और अपनी पार्टी के नामकरण मे भी 'समाजवाद' शब्द जोडा था। उनके उद्घोषित लक्ष्यो मे स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख है कि उनकी पार्टी मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध है। सरदार भगतसिह तो पार्टी के प्रमुख विचारक (थ्योरीशियन) ही माने जाते थे। आजाद यद्यपि अपने साथियो मे सबसे कम शिक्षित थे, तथापि उनमे सगठन-कुशलता और चितन-शक्ति गज़ब की थी। अपने इन्ही असाधारण गुणो के कारण वह क्रातिकारी दल के नेता थे। उनकी सूझ-बूझ और दूर-दर्शिता का ही परिणाम था कि वह

काकोरी-केस की फरारी के बाद ६ वर्षो तक खुलेआम अपना काम करते रहे, यद्यपि हजारो के इनाम भी उन्हे पकडवाने के लिये घोषित किए गए थे तथापि पुलिस उन्हे पकड न सकी ।

अद्भुत जीवन

ऐसा था अद्भुत जीवन महान् क्रातिकारी का। अब आप ही निर्णय कीजिए कि क्या यह महान् जीवन राष्ट्र का एक उच्चतम आदश नही बन सकता और राष्ट्रवासियो का एक प्रमुख श्रद्धाकेद्र नही हो सकता ? सच बात तो यह है कि ऐसे परिपूर्ण और तेजस्वी जीवन ही हमारे राष्ट्रीय आदर्श बनने चाहिए ।

*



२७

सरदार भगतसिह

२३ मार्च, १९३१ । लाहौर-जेल मे क्रातिकारी-शिरोमणि सरदार भगतसिह की हत्या । हॉ, फॉसी नही, हत्या ही । क्योकि फॉसी तो दूसरे दिन होनेवाली थी और वह दी भी जाती है प्रात काल । फिर निश्चित समय से पूर्व ही फॉसी क्यो ? स्पष्ट था कि ब्रिटिश सरकार को कोई भय अथवा आशका थी, जिसके कारण उसे सरदार भगतसिह को वैधानिक फॉसी देने के बजाय उनकी अवैधानिक 'हत्या' करनी पडी । और इस हत्या पर पडा रहस्य का आवरण । उस समय जितना गहरा था, उतना ही आज तीन दशक बाद भी है । जिस क्रातिकारी नेता को देश की करोड-करोड जनता अपने हृदय-मदिर मे

प्रतिष्ठित कर चुकी हो और उसकी रिहाई के लिये आवाज बुलद करते-करते उसके गले बैठ गए हो, लाडले को विचित्र परिस्थितियो मे फॉसी देकर चुपचाप उसके अधजले शरीर को नदी मे प्रवाहित कर देना एक रहस्य-पूण हत्या नही, तो और क्या थी ?

सरदार भगतसिह जब केद्रीय असेबली मे बम फेककर अपने साथी-सहित गिरफ्तार हुए और लाहौर-जेल मे रखकर जब उन पर मुकदमा चला, तो बाहर के क्रातिकारियो ने उन्हे जेल से छुडा लेने की योजना बनाई। यद्यपि दल के नेता चद्र-शेखर आजाद सरदार भगतसिह द्वारा बम फेककर यो ही अपने को पकडा देने के पक्ष मे न थे, किंतु जब बहुमत से यह निर्णय स्वीकार किया गया, तब वह चुप हो गए, लेकिन बाद मे उन्हे छुडाने की योजना के सूत्रधार भी वही बने।

आजाद ने इसके लिये भगवतीचरण की क्रातिकारिणी पत्नी दुर्गादेवी को भेष बदलाकर भगतसिह की चाची आदि बनवा-कर कई बार उनसे विचार-विमर्श करने के लिये जेल भेजा। अतत तय हुआ कि अनशन की हालत मे सरदार भगतसिह जब निकट ही स्थित एक जेल से दूसरी जेल मे भेजे जा रहे हो, पुलिस पर बम से आक्रमण करके उन्हे छुडा लिया जाय। इसके लिये कार की व्यवस्था भी हो गई थी, जो तुरत उन्हे दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिये थी। इसके लिये जेल के पास ही एक मकान भी ले लिया गया था।

जब यह कार्य-क्रम निश्चित हो गया, तो तय हुआ कि नए

बनाए गए बमो का परीक्षण तो कम-से-कम कर लिया जाय। ऐसा न हो कि कही वे मौके पर धोका दे दे। शाम को उक्त काय-क्रम पूण होना था और दिन मे भगवतीचरण अपने दो साथी—सुखदेवराज और वैशपायन को लेकर रावी के किनारे जगल मे बम-परीक्षण के लिये गए। जैसे ही उन्होने एक बम हाथ मे उठाया, उसकी कैप ढीली थी। भगवतीचरण ने साथियो से यह बात बताई। यह सुनकर सुखदेवराज परिहास करते हुए बोले—"लगता है, भगवती भाई डर गए।" और इसके साथ ही वह भगवतीचरण के हाथ से वह बम लेने के लिये आगे वढे। बम सुखदेवराज के हाथ मे आ भी न पाया था कि भगवतीचरण के ही हाथ मे दग गया। जोरो का धडाका हुआ। भगवतीचरण सख्त घायल हुए, सुखदेवराज को भी पैरो मे बहुत चोट आई।

भगवतीचरण को अपने बचने की उम्मीद न थी। वह बोले—"बधुओ, अब मेरी चिता न करो। जाओ, 'ऐक्शन' आज ही अपने निश्चित समय से होना चाहिए।" लेकिन सुखदेवराज न माने। वह किसी तरह से गिरते-पडते नगर मे आए और इस दुर्घटना की सूचना अपने शेष साथियो को दी। बाद मे यशपाल घटना-स्थल पर पहुँचे। फिर क्या हुआ, भगवतीचरण ने चिकित्सा के अभाव मे कब और कैसे दम तोड दिया, यह सब रहस्य के गर्भ मे ही है। इतना अवश्य ज्ञात है कि उस वीर को सैनिक सलामी देकर रावी नदी मे ही प्रवाहित कर दिया गया।

यद्यपि भगवतीचरणजी ने उसी दिन 'ऐक्शन' करने का आग्रह किया था, लेकिन शेष क्रातिकारियो ने अपने एक प्रिय साथी के बिछोह के कारण यह योजना स्थगित कर दूसरे दिन करने का निश्चय किया। लेकिन दुर्भाग्य ने अभी देश के इन मतवाले वीरो का पीछा नही छोडा था। जेल के पासवाले जिस घर के कमरे मे 'ऐक्शन' के लिये निश्चित बम रक्खा था, उसमे चारो तरफ से बद होने के कारण कुछ ऐसी गर्मी भर गई कि उसके कारण ही वह बम सुबह तडके अपने आप ही फट गया। बम फटना था कि जोरो का धडाका हुआ, और उसकी आवाज दूर-दूर तक फैल गई। वह घर तो मानो हिल ही उठा था। सयोग से उस घर के ऊपरी भाग मे सरकार के एक उच्च अधिकारी रहते थे। आजाद तुरत उनके पास पहुँचे। अधिकारी महोदय शायद पुलिस को फोन करने जा रहे थे कि आजाद ने उनकी छाती के सामने पिस्तौल तान दी और कहा—"खबरदार, जो कही फोन किया। हम लोग क्रातिकारी है। बम फट चुका है। हम शीघ्र ही घर छोड रहे है। हमारे यहाँ से जाने के बाद ही आप जिसको जी चाहे, फोन करे।"

और, इस घटना के बाद भगतसिह की रिहाई की योजना प्राय समाप्त हो गई। सरकार को बम फटने की सूचना मिल चुकी थी और वह सतर्क हो गई थी।

इतना ही नही, कुछ जानकार लोगो—विशेषकर भगवतीसिह के अनुज सरदार कुलवीरसिंह का ऐसा मत है कि वायस-

राय के सकेत पर केंद्रीय सरकार का ऐसा आदेश उस रात को पजाब-सरकार के पास जानेवाला था कि सरदार भगतसिह की फॉसी स्थगित कर दी जाय, किंतु इसी बीच एक उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी की पूव सूचना अथवा सकेत पर जेल - अधिकारियो ने सरदार भगतसिह तथा उनके दो साथियो को समय से पहले ही फॉसी दे दी ।

शायद देश की आजादी के लिये उनके खून की जरूरत थी और विधाता को भी यही मजूर था । ठीक भी है, सरदार भगतसिह-जैसे बलिदानी आदश यदि इसी देश मे प्रचुर सख्या मे न होते, तो भारतीय जनता को आज त्याग और बलिदान की प्रेरणा कहाँ से मिलती ।

सरदार भगतसिह-जैसे क्रातिकारी नेताओ के सामने अपना काय-क्रम और लक्ष्य बिलकुल स्पष्ट था । न कही कोई भ्रम था और न कोई अस्पष्टता । इसीलिये एक बार जब उनके एक साथी ने पूछा—"सरदार, हम लोग आजादी की लडाई अपनी जान पर खेलकर लड रहे है । हम जानते है कि हममे से अधिकाश आजादी आने के पहले ही किसी-न-किसी रूप मे मरेगे और आजादी की झलक भी न देख सकेंगे, तो फिर ऐसी कौन-सी भावना मरते समय हमे सतोष प्रदान करेगी ?"

उस समय सच्चे कमयोगी की भाँति वह अत्यत शात और सयत वाणी मे बोले थे—"बधुवर, यदि हम सहस्रो लोग अपने प्राण देकर सिफ देश मे 'इकलाब-जिदाबाद' की हवा बहा सके, तो वही हमारे जीवन-प्रयासो और प्राणो की सबसे बडी

कीमत होगी, हमारे जीवन की सबसे बडी उपलब्धि होगी इससे अधिक और कुछ नही।"

इन थोडे-से शब्दो मे उस बलिदानी हृदय मे कितना गहन जीवन-दर्शन छिपा हुआ था, जो देश के लिये ही मरने की अनुपम शक्ति प्रदान कर रहा था। काश, देश को स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद इस अनुपम जीवन-दर्शन का साक्षात्कार कराया जाता, तो आज अपने राष्ट्र के सार्वजनिक जीवन मे वतमान अराजकता न दिखाई पडती। जो देश के लिये मर सकता है, वही देश के लिये जीता है, और जो देश के लिये जीता है, वही देश के लिये मर सकता है। इसी को कहते है देश के राष्ट्रीय चरित्र की श्रेष्ठता, जिसके अभाव मे राष्ट्र-जीवन मे व्यक्तिगत स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष और अतत देश-भक्ति-शून्यता उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति मे देश के लोग न देश के लिये मर सकते हे और न उसके लिये जी सकते है। बस, वे अपने स्वार्थों के लिये ही जी और मर सकते है। इसीलिये आज देश के जन-मानस मे सरदार भगतसिह का ऐसा ही चित्र निर्माण होना चाहिए, जिसका एक शीर्षक हो—'देश के लिये मरना और देश के लिये ही जीना।'

सन् १९२८ की बात है। साइमन कमीशन देश के विभिन्न स्थानो पर जा रहा था और सभी स्थानो पर देश-भक्त-तत्त्व उसका विरोध और बहिष्कार कर रहे थे। लाहौर मे भी देश के जन-नेता लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन का आयोजन किया गया। नोकरशाही बौखला

उठी, उसने लालाजी-सहित समस्त प्रदर्शनकारियो पर इतनी जबरदस्त लाठी-वर्षा की कि लालाजो का वृद्ध शरीर उसे सहन न कर सका और कुछ ही दिनो बाद देश की बलि-वेदी पर चढ गया। स्पष्ट था कि पुलिस कप्तान स्काट और सहायक पुलिस कप्तान साडर्स के नेतृत्व मे पुलिस ने जो अत्याचार किए थे, लालाजी का प्राणात उसी से हुआ था। देश का बच्चा-बच्चा इसको जानता था और वह क्षोभ तथा प्रतिहिसा से भरा था। राष्ट्र-नेता का अपमान सपूण राष्ट्र का अपमान था। उसका बदला लेना आवश्यक था।

उसी समय सरदार भगतसिह अपने साथियो-सहित आगे बढे, और ठीक एक माह बाद जब साडर्स अपनी मोटर-साइकिल पर कोतवाली से बाहर निकल रहा था, सरदार भगतसिह और उनके साथियो ने दिन-दहाडे उसको गोली से मारकर अपने राष्ट्र-नेता लालाजी के अपमान का बदला ले लिया। यह देखकर अँगरेज सरकार जल-भुनकर राख हुई, लेकिन देश के देश-भक्त तत्त्व हर्षित हुए इस बात पर कि अभी जीवित हे कोई मा का लाल, जो माता और उसके प्रिय सतान के अपमान को नही सहन कर सकता।

और, आज क्या स्थिति है ? आज तो केवल एक नेता पर ही नही, पूरे देश पर चीनियो ने मारक प्रहार करके उसे अपमानित किया है। हमारे हजारो सैनिक युद्ध मे मारे अथवा बदी बनाए गए। उस पर भी हमारी १४।। हजार वर्ग मील भूमि पर शत्रुओ ने कब्जा कर रक्खा है, जिसे

अभी तक हम वापस नही ले पाए। इतिहास जानता है कि सपूण राष्ट्र का ऐसा अपमान शायद कभी नही हुआ। परिणाम-स्वरूप देश का मनोबल क्षीण हुआ। विदेशो मे प्रतिष्ठा गिरी। यह दुर्भाग्य-पूर्ण स्थिति तभी दूर होगी, जब देश अपने अपमान का बदला लेगा और शत्रु के कब्जे मे गई अपनी एक-एक इच भूमि को वापस लेगा।

यह सभव तभी है, जब भारतीय जन-मानस सरदार भगतसिह-जैसे क्रातिकारी का जीवन-चित्र अपने मे प्रतिष्ठित करे, जिसका दूसरा शीषक हो—'अपमान का बदला लेकर रहे भले ही इसके लिये प्राण देने पडे।' आज केवल क्रातिकारी बलिदानियो का जीवन ही देश को अपने अपमान का कलक धो डालने के लिये प्रेरित और तत्पर कर सकता है, क्योकि अपमान का बदला लेने की उनकी ही शानदार परपरा है। कनाडा मे भाई मेवासिह ने हायकिसन-नामक अँगरेज को खुली अदालत मे मारकर भारतीयो के अपमान का बदला लिया, मदनलाल धीगरा ने अँगरेजो के घर (लदन) मे घुसकर, कजन वायली को मारकर देश के अपमान का बदला लिया, उधमसिह ने जनरल डायर को लदन मे मारकर दो-तीन दशक बाद राष्ट्र के अपमान का कलक धोया था और सबसे आगे निकले बगाल के वे नन्हे-नन्हे क्रातिकारी, जिन्होने अपने किसी साथी पर बरसाए गए बेतो तक के लिये पुलिस-अधिकारी के खून से बदला लिया था।

❀

२८

नेताजी सुभाष बोस

बकाक मे एक दिन मेरी थाईलैड के एक भूतपूर्व प्रधान मत्री से बात हो रही थी। वह उस समय इस देश के प्रधान मत्री थे, जब नेताजी सुभाषचद्र बोस दक्षिण पूर्वी एशिया मे अपनी आजाद हिद सेना के गठन मे लगे हुए थे। उसी समय नेताजी अपने इस महान् कार्य के सिलसिले मे कई बार थाईलैड आए और इन प्रधान मत्री महोदय से मिले थे। कुछ समय साथ मे ठहरे भी थे। इस तथ्य को मै पहले से ही जानता था—आजाद हिद फौज के थाईलैड-स्थित भूतपूर्व प्रमुख कार्यकर्ता पडित रघुनाथ शर्मा ने भी विशेष रूप से बताया था। अतएव सामान्य बातचीत के बाद मेरी स्वाभाविक जिज्ञासा हुई कि इस प्रमुख

भागे, वह बराबर यही कहते रहे कि विदेश मे हमारा यह मोर्चा दूसरे नबर का है । पहला मोरचा तो भारतवर्ष मे महात्मा गाधी के नेतृत्व मे पहले ही लगा हुआ है ।

अद्भुत दृढ निश्चय

नेताजी मे वीरता और साहस की मात्रा कल्पनातीत थी । भारत मे अँगरेज-सरकार की सख्त निगरानी के बाद भी आप उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रात और अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुँच गए, तथा हिटलर से मिलकर अँगरेज-सरकार को उलटने की योजना बनाने मे सफल हुए । उससे भी आश्चर्य-जनक, वीरता और साहस की बात उस समय हुई, जब वह जर्मनी से एक पनडुब्बी मे बैठकर दक्षिण-पूर्वी एशिया पहुँच गए । आज तक इस अद्वितीय साहस-पूण कार्य का अधिकृत और पूरा विवरण अज्ञात है, लेकिन इतना जरूर ज्ञात है कि जब जर्मनी से पनडुब्बी मे पलायन से पूर्व किसी ने उनको चेतावनी दी कि महायुद्ध के कारण चारो तरफ शत्रुओ के युद्ध-पोत घूम रहे है, ऐसी स्थिति मे उनके दक्षिण-पूर्वी एशिया तक पहुँचने की सभावना केवल ५० फीसदी ही है । उस समय नेताजी ने उत्तर दिया—"५० फीसदी की सभावना तो बहुत है । अगर ५ फीसदी हो, तो भी जाऊँगा ।"

महान् उपलब्धि

नेताजी की कर्मशीलता के दो फल सबसे मीठे थे । एक

तो आजाद हिंद सरकार की स्थापना और दूसरे आजाद हिंद फौज का निर्माण। यद्यपि सरकार बनाने का उद्योग कोई नया न था। १९१५ मे राजा महेंद्रप्रताप अफगानिस्तान मे ऐसी सरकार स्थापित कर चुके थे, जो कुछ समय तक चली भी थी, किंतु जो सफलता नेताजी अर्जित कर सके, वह इसके पूर्व संभव न हुई। नेताजी ने जिस अस्थायी सरकार की स्थापना की, उसका मुख्य कार्यालय सिंगापुर मे था, जिसकी अपनी फौज, अपना सिक्का, अपना रेडियो-स्टेशन आदि सभी कुछ था। नेताजी की यह सफलता भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास की अभूतपूर्व उपलब्धि थी।

एक गधा छोडकर

इसी सरकार की सेना के प्रधान की हैसियत से नेताजी ने अपने सहयोगी राष्ट्रो के नेताओ के साथ अपने को समान स्तर पर खडा किया और समान स्तर ही नही, अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व, स्वतंत्र चिंतन और स्वतंत्र निर्णय भी। एक बार नेताजी सिंगापुर की सभा मे भाषण दे रहे थे। तत्कालीन जापानी प्रधान मंत्री जनरल तोजो भी उसमे उपस्थित थे। नेताजी उस समय एक गलतफहमी दूर करने लगे—"जो लोग ऐसा समझते है कि हम अँगरेजो की गुलामी से अपने को छुडाकर जापानियो की गुलामी मे बाँध लेगे, क्योकि जापानी इस समय हमारी सहायता कर रहे है, तो मै कहूँगा कि उनसे ज्यादा बेवकूफ और दूसरा कोई नही। भला कोई एक गधे को छोड-

कर दूसरे को पकडेगा ।" दुनिया के प्रथम श्रेणी के राष्ट्र मे मुकाबला लेनेवाले राष्ट्र जापान के प्रधान मत्री को जब यह अनुवाद करके बताया गया, तो वह नेताजी का मुँह ताकता रह गया ।

इसी प्रकार की घटना एक और है । उस समय आजाद हिद सेना और जापान की सेना एक साथ भारत की ओर प्रयाण करने को तैयार थी । नेताजी जापानी सेनाधिकारियो के सामने ही अपने सैनिको को एक भाषण मे कुछ निर्देश दे रहे थे । वह कह रहे थे—"अब शीघ्र ही हम जापानियो के साथ भारतीय सीमा मे प्रवेश करेंगे । हमे भले प्रकार पता है कि हम अपनी स्त्रियो को सबसे ज्यादा पवित्र मानते है । जापानी सैनिको को भी इसका ध्यान रखना होगा । यदि वे नही रखते और किसी स्त्री का स्पर्श करते है, तो वही उनको गोली से उडा दो और बाद मे मुझे बताओ । मै निपट लूँगा ।" जापानी सेनाधिकारी इस साहस और वीरता को देखकर दग रह गए थे ।

हजारो पुत्रियो की चिता

उस समय जापान के आत्मसमर्पण के बाद आजाद हिद सेना विघटित हो रही थी । स्त्रियो की 'झाँसी की रानी रेजीमेंट' का एक दस्ता देवनाथदास के नेतृत्व मे वापस जा चुका था और दूसरा नेताजी के नेतृत्व मे जानेवाला था । उनकी जान को सबसे ज्यादा खतरा था, क्योकि अँगरेज-सरकार की आँख

की किरकिरी वही थे। लोगो ने उन्हे राय दी कि आप शीघ्र ही सकुशल थाईलैड चले जायॅ, यह दस्ता किसी दूसरे सेनापति के साथ भेज दिया जायगा। उस समय उन्होने कहा था—"भाई, जानते हो कि जिसके एक लडकी रहती है, वह उसकी सुरक्षा के लिये कितना चितित रहता है, फिर मेरे तो हज़ारो है। जरा मेरी चिता का अनुमान लगाओ।"

जिस समय इस रेजीमेट की सैनिक लडकिया वापस भेजी जाने लगी, उस समय वे फूट-फूटकर रो रही थी—"नेताजी, हमे भारत जाने दीजिए। हम लोग अब भी वहा क्राति कर सकती है।" नेताजी ने यही समझाया कि इस समय घर जाओ और उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करो।

इस असफलता के बाद भी नेताजी के चेहरे पर कोई शिकन नही थी। वह यही कह रहे थ—"हमने कोई आत्म-समर्पण नही किया। एक सफलता अवश्य हाथ लगी है। लेकिन असली मोर्चा तो हमारे देश मे ही है। वह अब भी बना हुआ है।"

इसके बाद ही वह थाईलैड से जापान जाने के माग मे विमान-दुर्घटना मे मर गए। देश का दुर्भाग्य रहा कि देश को आजादी दिलाने की सामर्थ्य रखनेवाला वीर आजादी आने तक जीवित न रह सका। शायद विधाता ने उन्हे विदेशी शासन की जडे हिलाने-भर के लिये ही पैदा किया था। फिर भी जिन रहस्यमय परिस्थितियो मे वह मरे, उनसे नेताजी के अभाव की कसक देशवासियो के हृदयो मे और अधिक बढ गई। तभी